वर्ष-25 ज्येष्ठ-आषाढ़ जून 2020 अंक-6
आर.एन.आई.नं. 0048570/29/30/982
पोस्ट मालवा डिवीजन पी.आर.एन.नं. एस.डी.08/2018-2020
प्रकाशन हर माह की 6 तारीख को
मूल्य 10/- रुपये

मासिक

आगमोद्धारक

आगम की मूलशक्ति ज्ञान है जिसके कई पहलु है। क्षेत्र है। यह ज्ञान कभी शब्द के रूप में प्रकट होता है कभी विचार के रूप में, कभी संकल्प के रूप में हमारे साथ चलता है तो कभी आचरण के रूप में हमें चलना सिखाता है। कभी मौन धारण कर यह आगम ज्ञान हमारे मन को मुखरित करता है कभी मनन बनकर मन में चिंतन की भावना जागृत करता है। यह आगम ज्ञान कभी कर्म की भावना जगाता है तो कभी धर्म का रहस्य खोलता है और कभी मुक्ति का मार्ग दिखलाता है। संक्षेप में कहें तो आगम जिस अर्थ में ज्ञान का पीठ माना जाता है उस अर्थ में यह ज्ञान जगत का सर्वस्व है, सृष्टि का बीजाक्षर है। जैन जगत के साहित्य की यह शाश्वत अभिव्यंजना केवल हमारे पूर्व गणधरों के अक्षर बीज मात्र न होकर समस्त विषयों की जानकारी के अभीष्ट की प्राप्ति का आधार है।

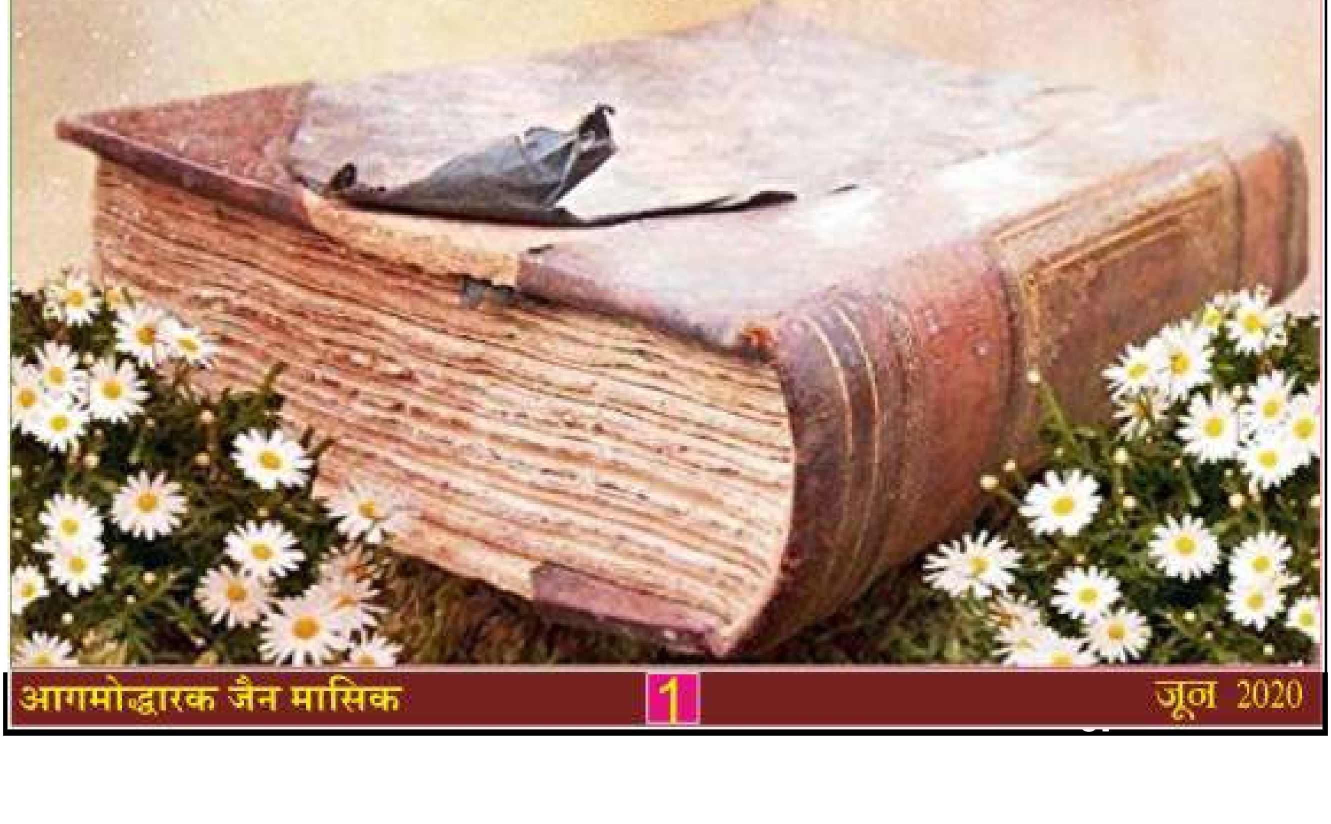

आगमोद्धारक

नमो नाणस्स नमो नमः

श्री अभ्युदय फाउण्डेशन
उज्जैन का जैन हिन्दी मासिक

प्रधान सम्पादक

डॉ.सुभाष जैन, उज्जैन

सम्पादकीय कार्यालय

डॉ.सुभाष जैन

46, सखीपुरा, उज्जैन-456001 (म.प्र.)
मोबा. नं. 94250-91012, 8770884897
1-E-mail-Subash_3333@yahoo.co.in
2-E-mail-i.am.Subhashjain@gmail.com

इन्दौर कार्यालय

प्रफुल्लकुमार जैन ''पप्पू''

1073, सुदामानगर, फूटीकोठी रोड़
इन्दौर-452009 (म.प्र.)
5057087, 5057067
मोबा. नं.-98260-10089

सदस्यता

आगमोद्धारक के सदस्य बनने वाले श्रीमानों से निवेदन है कि सदस्य के लिये शुल्क राशि बैंक ड्राफ्ट/चैक/M.O. से श्री अभ्युदय फाउण्डेशन, उज्जैन के नाम से सम्पादकीय पते पर भिजवाये। अन्य नाम से सदस्यता राशि स्वीकार नहीं की जायेगी। - **डॉ.सुभाष जैन**

दूसरा कुछ भी मत खोज। केवल एक सत्पुरुष को खोज कर, उसके चरण कमल में सर्व भाव अर्पण करके आचरण किये जा। फिर भी यदि मोक्ष न मिले तो मुझसे लेना। सत्पुरुष वही है जिसे निशदिन आत्मोपयोग रहता है शास्त्र में नहीं है और सुनने में भी नहीं आया है, फिर भी अनुभवगम्य है ऐसा जिसका कथन है अंतरंग में स्पृहा नहीं है ऐसी जिसकी गुप्त आचरणा है।

दिव्य आर्शीवाददाता

प.पू.मालव भूषण आचार्य श्री नवरत्नसागर सूरीश्वरजी म.सा.

मार्गदर्शक एवं प्रेरक

प.पूज्य आचार्य श्री विश्वरत्नसागर सूरीश्वरजी म.सा.

श्री अभ्युदय फाउण्डेशन, उज्जैन

अध्यक्ष- भाई श्री प्रफुल्लजी जवेरी, मुंबई (महा.)

शाश्वत संदेश

अप्पाणमेव जुज्झाहि, किं ते जुज्झेण बज्झाओ।
अप्पाणमेवमप्पाणं, जइत्ता सुहमेहए॥

अपनी आत्मा के साथ ही युद्ध करो। बाह्य शत्रुओं के साथ युद्ध करने से क्या मिलेगा ? जो अपने द्वारा अपनी आत्मा को जीत लेता है, वही सच्चा सुख प्राप्त करता है।

- उत्तरा. सूत्र, 9.35

पाथेय

हे प्रभु ! निरन्तर तुमसे जुड़े रहना, है एक परम आश्वासन इस बात का,कि हम हर बाधा का करेंगे अतिक्रमण। अन्तर्बाह्य जगत की हर कठिनाई का करेंगे शमन ! हे स्वामी, एक असीम उल्लास से ओत प्रोत है मेरा मन। और मेरे हृदय से उमड़ रहे है लहरों के समान आनन्द-गान ! तुम्हारी विजय में पूर्ण विश्वास रखते हुए, मैं एक वृहद शांति और अदम्य शक्ति का कर रही हूं अनुभव। प्रभु, तुमने मेरी सत्ता की परिपूर्ण कर दिया इसके ज्ञान बोध को किया प्रदीप्त और प्रवाहित कर दिया इसमें छुपे शीतल झरनों को। तुमने इसके प्रेम को अनन्त गुना किया वर्द्धित। और अब मैं, इस विश्व और अपने 'मैं' के बीच, नहीं पाती कोई विभेद। तुम सर्वात्मा हो, और तुम्हारी कृपा की जलधाराएँ सकल-विश्व को कर रही है आप्लावित। गाओ, ओ देशों ! ओ मनुष्यों ! गाओ, दिव्य सामन्जस्य यहां विद्यमान है।

शुल्क सोपान

स्तम्भ	11,511/- रुपये
आजीवन	1000/- रुपये
पांच वर्षीय सदस्य	301/- रुपये
एक वर्षीय सदस्य	80/- रुपये
एक प्रति	10/- रुपये

नोट- आगमोद्धारक में प्रकाशित रचनाओं से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

वर्ष-25 ज्येष्ठ-आषाढ़ जून 2020 अंक-6

विषय सूची

1- शाश्वत संदेश, पाथेय 3

2- विषय सूची 4

3- सब धर्मो से बड़ा है राष्ट्रधर्म (सम्पादकीय)- डॉ.सुभाष जैन 5

4- गौतमस्वामी का परिचय 6

5- श्री शत्रुंजय गिरिराज के 108 नाम 7-8

6- पाप की सजा भारी-प.पू.आचार्य श्री अरुणविजयजी म.सा., 9-11

7- प्रमोद भावना : सर्वत्र गुण देखो....आ.श्रीमद् विजयजिनोत्तम सूरीश्वरजी म.

8- मै स्कंधकाचार्य -श्रीमद् विजयमुक्ति/ मुनिचन्द्रसूरीश्वरजी म., 13-15

9- संसार मे मतलब के रिश्ते ज्यादा है-प.पू.साध्वी डॉ.सुभाषाजी म.सा. 16

10-बिटिया रानी...!, पू.आ.श्री जितरत्नसागरसूरीजी ''राजहंस'' 17-18
पराक्रमी शाकाहारी राजवंश-डॉ.दिलीप धीग

11-अध्यात्म का विज्ञान, पूर्णत्व का सौदर्य 19-21

12-वस्तुपाल तेजपाल दोनों भाईयों ने...., सच्ची तपस्या 22

13-उत्कृष्टविचारों का सतत सानिध्य, पूज्यपाद गुरुदेवश्री 23-25

14-आत्मबल ही सर्वोपरि 26-27

15-कौन नाथ ? कौन अनाथ ? 28-29

16-पू.आ.श्री अपूर्वमंगलरत्नसागर सूरीश्वरजी महाराजा की तृतीय पुण्यतिथि 30-31
25 मई पर शब्दाजंली-देवनगर की अपूर्व मालव विभूति,यह दरिद्रता नहीं अपरिग्रह है

17-कैसी हो साक्षी भाव की सिद्धि !, पन्ना धाय 32-34

18-बंद करो यह मैच ! मुनिश्री तारकचन्द्रसागरजी म, तीव्रभाव का तात्कालिक फल 35-37

19-वर्गपहेली- 302 - जयंतीलाल जैन 38

20-ज्ञान गंगोत्री- 302- पंन्यास प्रवर मृदुरत्नसागरजी म., 39

21-आगमोद्धारक भविष्य फल- जून-2020- अनु दीपक जैन 40

22-शासन-समाचार 41

23- हमारे तीज त्यौहार, सादर आमंत्रण, सारे देश में आगमोद्धारक प्रतिनिधि 42
नियुक्त करना है

संपादकीय

सब धर्मों से बड़ा है राष्ट्र धर्म

प्रत्येक देश और समाज के अपने सांस्कृतिक मूल्य होते हैं। संस्कृति एक कालजरी तत्व है। संस्कृति में अनेक तत्वों का समावेश होता है। इस तत्वों में मानव जीवन को सर्वोधिक प्रभावित करनेवाला तत्व है। धर्म/धर्म की आराधना साधना मानव जीवन का अहम पक्ष है। धर्म का अर्थ है-सत्य,अहिंसा एवं संयम धारण करना। ''धारतपति इति धर्म'' जो धारण किया जाता है वह धर्म है। ''यतो ऽभ्युरयनिश्रेयसिद्धिः से धर्म'' जिसमें सर्वागोंण उदय समृद्धि तथा मुक्ति की प्राप्ति हो वह धर्म है। अतः इससे स्पष्ट होता है कि धर्म किसी व्यक्ति अथवा समुदाय विशेष का नहीं है अपितु प्रत्येक व्यक्ति का होता है। धर्म जीवन जीने की कला है। धर्म का कार्य विकार को मिटाना है। अगर वर्षो तक धर्म के द्वार पर जाकर भी हमारे विकार नहीं मिट पाये तो उस धर्म को माननेवाले, समुदाय के लोगों यह आत्ममनन करना चाहिये कि धर्म के मार्ग पर चले रहे है क्या ? व्यक्ति धर्म के नाम पर सम्प्रदाय के मोह में उलझ गया है। देश के वर्तमान हालत देखकर हमें चिंतन करना होगा कि क्या मात्र मंदिर-मस्जिद-गुरुद्वारे में जाकर करनेवाला ही धर्म है ? कोरोना वायरस ने धर्म की परिभाषा ही बदलकर रख दी है। महामारी से मानवीयता आये, सेवा का जो धर्म दिखाई दिया उससे यह सिद्ध कर दिया है कि किसी भी धर्म से देश बड़ा होता है। यदि देश नहीं बचेगा तो धर्म और समाज का कोई अस्तित्व नहीं बचेगा। कोरोना वायरस की महाविपदा ने अमीर-गरीब सब को एहसास करवा दिया है कि भौतिक सुख सम्पदा का कोई महत्व नहीं है। व्यक्ति का अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा तो भौतिक सुख सम्पदा किस काम आयेगी ? जाति-मजहब-भाषा को देश से अधिक महत्व देनेवाली विचारधारा लम्बे समय तक नहीं टाल सकती है, संकटकाल में तो सबसे पहले देश, फिर धर्म और इसके बाद समाज को रखना चाहिये, अगर देश ही नहीं बचेगा तो धर्म और समाज कैसे बच सकेगा ? गणतंत्र तो हमें प्राप्त हो गया है किंतु गुणतंत्र के विकास में हम पिछड़ गये है ! वैचारिक, स्वतंत्राता का गलत फायदा उठाया जा रहा है। विरोध करने की स्वतंत्राता का उपयोग कुछ लोग मर्यादा के उल्लंघन में कर रहे है। स्वतंत्राता के अधिकार को हमने नैतिकता भूलकर विद्रोह का हथियार बना लिया है। कोई भी धर्म से इस तरह के व्यवहार को नहीं सिखाया जाता है। देश-धर्म-समाज के विरुद्ध आचरण करने का, हम किस धर्म का पालन कर रहे है, यह चिंतन करने जैसा है। धर्मवाद विवाद का विषय नहीं है बल्कि कर्त्तव्य और त्याग का पर्याय है। धर्म का काम मनुष्य को खंडित करना नहीं है अपितु जाति,वर्ग,वर्ण,पंथ के खण्ड-खण्ड में बटी हुई मानवता को जोड़ना है। कोरोना महामारी ने मानवीयता की अनेक मिसाल कायम की है और धर्म की कट्टरता रखनेवालों का कर्त्तव्य और त्याग का धर्म सीखाकर उन्हें यह एहसास करवा दिया है कि धर्म आचरण का विषय है, आचर विचारों की उत्तमता से श्रृंगारित जीवन है। वास्तविक धर्म है, धर्म की माला पहनकर धर्म नहीं किया जा सकता है बल्कि धर्म प्राणी मात्र के प्रति दया के भाव में निहित है, धर्म लड़ना-झगड़ना नहीं सिखाता है वह तो जीना सिखाता है, धर्म मानव को जोड़ने के लिये है, तोड़ने के लिये नहीं है।

जब राष्ट्र पर विपदा आती है तो धर्म अपनी नई परिभाषा लिखकर सबको अहसास करता है कि धर्म क्या है ? कोरोना महामारी ने यह बतला दिया है कि देश के प्रति समर्पित होकर धर्म का निर्वाह किस तरह से किया जा सकता है। राष्ट्र और समाज को सुरक्षित रखने के लिये धर्म का संदेश क्या करता है ? धर्म कैसे सद्‌भाव का प्रतीक बन सेवा का अवसर खोज लेता है। यह पूरे राष्ट्र में दिखाई दिया है। इस बीच अर्नगल वार्तालाप करनेवाले धार्मिक-राजनैतिक आकाओं की भी पहचान अच्छी तरह से हो गई है। राग-द्वेष-घृणा फैलाकर इस विकट महामारी से भी देश और समाज का हित न साधकर अपने स्वार्थ की रोटी सेंकनेवालों को भी जनता पहचान गई है। करना धरना कुछ नहीं सिर्फ अपने अस्तित्व को बचाने के लिये मीडिया का उपयोग कर राजनीतिक दावपेंच खेलना है।

महामारी के फैलने से लेकर आज तक ऐसे लोगों ने कौन सा सेवा धर्म निभाया है देश के प्रति, कौन सा समर्पण भाव दिखाया है देश की जनता, समाज के लिये क्या किया है, यह सब समझ में आनेवाली बात है, जिस भारत भूमि में देवता भी जन्म लेने के लिये तरसते है इस अध्यात्म भूमि पर आये संकट को दूर करने के लिये हमने किस धर्म का निर्वाह किया इसका आकंलन का अच्छा मंथन करने का यही समय है अगर आप ऐसा नहीं करते है तो इसका फैसला आपके कर्म आनेवाले समय में कर ही देंगे। परमात्म श्री महावीर स्वामीजी ने ''जियो और जीने दो'' का संदेश दिया था सिर्फ इन दो शब्दों ने प्रभुवीर ने अपने जीवन के आचरण को संसार के सामने देखकर अहिंसा, प्रेम, भाईचारे का जो संदेश दिया उससे प्रभु की मानवीय विचारधारा अमर हो गई है। प्रभु के इन दो शब्दों ने कमाल कर दिया तो सोचिये परमात्मा की पूरी शरण में जानेवाला कितना पुण्यशाली-भाग्यशाली हो सकता है ? अपने धर्म को पहचानने का यही वक्त है।

हमारे धर्म कर्त्तव्य का पालन करने के लिये तत्पर बने एक ऐसी मिशाल पेश करें कि लोग याद करें एक ऐसे धर्म का आगाज को जहां तर्क रहित मैत्री, स्वार्थ रहित सेवा युद्ध रहित विश्व, तनावरहित परिवार विवाद रहित कार्य की भावना से मानव जीवन में जागृति का नव निर्माण करने का संकल्प धर्म दिखाई दें।

''आज मेरा सारा देश लाम पर है, जो जहां है वतन के काम पर है।'' इस भावना के साथ हम अपने धर्म का निर्वाह करते हुए राष्ट्र के प्रति अपना धर्म निभाने को तत्पर बने यही अभिलाषा।

- डॉ. सुभाष जैन

गुरुश्री गौतम स्वामीजी

श्रीगौतम स्वामी भगवान महावीर के प्रथम गणधर थे। गौतम स्वामी का जन्म गोर्बर नामक ग्राम में हुआ था। गौतम स्वामी का जन्म ई.पूर्व 607 में हुआ था। गौतम स्वामी की माता का नाम पृथ्वीदेवी और पिता का नाम वसुभूति था। गौतम स्वामी का जन्म ब्राह्मण जाति में हुआ था। गौतम स्वामी का जन्म गौतम गौत्र में हुआ था। गौतम स्वामी का दूसरा नाम इंद्र भूति था। इंद्रों के द्वारा विभूति को प्राप्त करने के कारण गौतमस्वामी का इंद्र भूति यह नाम सार्थक था।

गौतम का अर्थ होता है भगवान की उत्कृष्ट वाणी और गौतम स्वामी भगवान की वाणी को झेलत/ब्राह्मण करते थे। उनकी वाणी को द्वदमार्ग रुप रचते थे। इसी कारण से उनका नाम गौतम स्वामी हुआ। गौतम स्वामी को तीर्थंकर महावीर के समदसरण में सर्वप्रथम से जाने का श्रेय सौधर्म इंद्र को प्राप्त हुआ। केवल ज्ञान हो जाने के पश्चात भी जब तीर्थंकर महावीर की दिव्य ध्वनि नहीं खीरी तब गणधर का आभाव जानकर सौधर्म इंद्र ने अवधि ज्ञान से इंद्र भूति ब्रह्मंड में गणधर बनने की योग्यता देखकर गौतम स्वामी को तीर्थकर महावीर के समवसरण में ले गए थे। गौतम स्वामी सौधर्म इंद्र के साथ शात्रत्रार्थ करने के लिए तीर्थंकर महावीर के समवसरण में गये थे। गौतम स्वामी ने तीर्थकर महावीर के साथ शात्रत्रार्थ नहीं किया। तीर्थकर महावीर के समवसरण में पहुंचते ही मानस्तंभ को देखकर गौतम स्वामी का मान/अहंकार भंग हो गया था। इसी वजह से उन्होंने शात्रत्रार्थ करने की बजाय विनय यंत्र हो जैनेश्वर दीक्षा स्वीकार्य कर ली थी।

गौतम स्वामी ने सर्व प्रथम जैनेश्वरी दीक्षा को स्वीकार्य कर सर्व प्रथम जैनम जयन्तु शासन का उद्घोष किया। गौतम स्वामी ने अपने 500 ब्रह्मंड शिष्यों सहित दीक्षा ली थी और गणधर प द पर आसीन हुए थे। गौतम स्वामी 50 वर्ष की उम्र में गणधर बने थे। गौतम स्वामी 30 वर्षो तक गणधर के प द पर आसीन रहे। फिर केवल ज्ञानी हुए। गौतम स्वामी को कार्तिक बदी अमावस्या दीपावली के दिन शाम के समय केवलज्ञान प्राप्त हुआ था। गौतम स्वामी 12 वर्षो तक केवलज्ञान रहे। गौतम स्वामी ने ई.पूर्व 515 में मोक्ष प्राप्त किया था। गौतम स्वामी ने 92 वर्ष की उम्र में मोक्ष प्राप्त किया था। गौतम स्वामी ने गुणावा से मोक्ष प्राप्त किया था। जैन समाज की ऐसी मान्यता है परन्तु उत्तर पुराण के अनुसार विपुलाचल पर्वत से मोक्ष प्राप्त हुआ। गौतम स्वामी के मोक्ष चले जाने के पश्चात सुधर्म स्वामी को केवलज्ञान प्राप्त हुआ।

❊ त्रिपदी द्वारा भगवान की कृपा से द्वादशांगी की रचना करने में समर्थ हुए।

❊ वाणिज्य ग्राम में आनंद श्रावक को मिच्छामि दुक्कड़म् देने गये।

❊ मृग गांव में मृगावती रानी के यहां मृगा लोढ़िया को देखने (मिलने) गए।

❊ भगवान महावीर को 36 हजार प्रश्न पूछे जो भगवती सूत्र में है।

❊ हालिक (खेडूत) को प्रतिबोध करने प्रभुवीर ने गौतम स्वामी को भेजा।

❊ केशी गणधर के साथ गौतम स्वामी का तिंदुक गाँव में मिलन हुआ।

❊ पोलासपुर में अइमुत्ता की विनंती से उनके घर गोचरी गए।

❊ अक्षीणमहानस लब्धि से 1503 तापस को खीर से पारणा कराया।

❊ 50 हजार शिष्य का परिवार था।

❊ गौतम स्वामी ने जिनको भी दीक्षा दी वे सभी केवलज्ञानी हुए।

❊ प्रभुवीर की आज्ञा से देवशर्मा को प्रतिबोध करने गए।

❊ विलाप करते कार्तिक सूद 1 को अपापापुरी में केवलज्ञानी बने।

❊ सात हाथ की काया, सुवर्ण देह, निर्वाण राजगृही में हुआ।

❊ अनंत लब्धि निधान छठ के पारणा छठ करने वाले महान तपस्वी थे।

❊ अष्टापद तीर्थ की स्वलब्धि से यात्रा की वहां जगचिंतामणि सूत्र की रचना की।

श्री शत्रुंजय गिरिराज के 108 नाम

गतांक से आगे...!

चौमुख चउगति दुःख हरे, सोवनमय सुविहार।
ते तीर्थेश्वर प्रणमीए, अक्षय सुख दातार ॥85॥

श्री भरतचक्रवर्ती ने स्वर्ण का मंदिर बनवाया उस समय उसमें चौमुखजी की प्रतिष्ठा होगी (मंदिर के चारों ओर एक-एक प्रतिमा हो उसे चौमुखजी कहते हैं) ऐसे चौमुखजी चार गति को दूर कर अक्षय सुख देनेवाले हैं। ऐसे तीर्थेश्वर को हम प्रणाम करें ॥85॥

ईण तीरथ मोटा थया, सोल उद्धार साकार।
ते तीर्थेश्वर प्रणमीए, लघु असंख्य विचार ॥86॥

(काल किसी को भी नहीं छोड़ता। उपर इस अवसर्पिणी काल में तो प्रत्येक वस्तु कालक्रम से जीर्ण होती है, इसलिये मंदिर इत्यादि की भी ऐसी स्थिति होती है। इस कारण मंदिर आदि जीर्ण हों तब उनका उद्धार करना आवश्यक हो जाता है) इस गिरि पर बड़े-बड़े सोलह उद्धार हुए है परन्तु छोटे उद्धार तो असंख्य हुए हैं, ऐसे इस तीर्थेश्वर को नमन करें ॥86॥

द्रव्य भाव वैरी तणो, जेहथी थाये अंत।
ते तीर्थेश्वर प्रणमीए, 'शत्रुंजय' समरंत ॥87॥

जिस गिरिराज का स्मरण करने पर उसके प्रभाव से द्रव्य भाव वैरी का अंत होता है, इस कारण जिसका नाम 'शत्रुंजय' पड़ा है। ऐसे इस तीर्थेश्वर को सदैव प्रणाम करों ॥87॥

पुंडरीक गणधर हुवा, प्रथम सिद्ध ईणे ठाम।
ते तीर्थेश्वर प्रणमीए, 'पुंडरीक' गिरि नाम ॥88॥

इस गिरिराज पर पुंडरीक गणधर, प्रथम सिद्ध हुए, इस कारण से उनके नाम से यह गिरि 'पुंडरीक गिरि' के नाम से पहचाना जाता है। ऐसे तीर्थराज को हे भाग्यशालियों! तुम नमन करो ॥88॥

कांकरे कांकरे ईण गिरि, सिद्ध हुवा सुपवित्त।
ते तीर्थेश्वर प्रणमीए, 'सिद्धक्षेत्र' समचित ॥89॥

इसी गिरिराज के कंकर कंकर पर पवित्र आत्मा सिद्ध हुई हैं। इसलिए इसका 'सिद्धक्षेत्र' ऐसा नाम भी है। ऐसे इस गिरि को समचित्तभाव से सदैव प्रणाम करें ॥89॥

मल द्रव्य भाव विशेषथी, जेहथी जाये दूर।
ते तीर्थेश्वर प्रणमीए, 'विमलाचल' सुखपुर ॥90॥

आत्मा पर लगे हुए कर्म के योग से द्रव्य भावमन आत्मा में भरा हुआ है। वह मल जिसके ध्यान के प्रभाव से सुखपूर्वक दूर होता है, और आत्मा विमल-निर्मल होती है। ऐसे इस 'विमलाचल' गिरिवर को भक्तिभाव से नमस्कार करो ॥90॥

सुरवरा बहु जे गिरे, निवसे निरमल ठाण।
ते तीर्थेश्वर प्रणमीए, 'सुरगिरि' नाम प्रणाम ॥91॥

जिस गिरि को निर्मल पवित्र स्थान जानकर कई ईन्द्र निवास स्थान बनाते हैं और इस कारण जिस गिरि को 'सुरगिरि' इस नाम से पुकारा जाता है, ऐसे इस तीर्थराज को नमन करों ॥91॥

परवत सहु मांहे वडो, 'महागिरि' तेणे कहंत।
ते तीर्थेश्वर प्रणमीए, दरशन लहे पुण्यवंत ॥92॥

जो गिरि पर्वतों में महिमा की दृष्टि से महान है। इसलिये 'महागिरि' कहलाता है तथा पुण्यात्मा प्राणी जिसके दर्शन प्राप्त करता है। इसलिये ऐसे तीर्थेश्वर को भक्तिभाव से प्रणाम करो ॥92॥

पुण्य अनर्गल जेहथी, थाये पाप विनाश।
ते तीर्थेश्वर प्रणमीए, नाम भलुं 'पुण्यराश' ॥93॥

जिसके प्रभाव से और संग से अनर्गल पुण्य होता है, और पाप नष्टहोता है। इस कारण जिसे 'पुण्यराशि' यह नाम मिला है, ऐसे इस तीर्थराज को प्रेम से नमस्कार करो ॥93॥

लक्ष्मी देवीओे कर्यो, कुंड कमल निवास।
ते तीर्थेश्वर प्रणमीए, पद्मनाम सुवास ॥94॥

इस गिरिराज के कुंड में कमल पर लक्ष्मीदेवी निवास करती हैं, इसलिये यह गिरि 'पद्मनाभ' नाम से प्रसिद्ध है। ऐसे प्रसिद्ध इस गिरिराज को नमस्कार करो ॥94॥

सवि गिरिमां सुरपति समो, पातक पंक विलात।
ते तीर्थेश्वर प्रणमीए, पर्वत 'ईन्द्र' विख्यात ॥95॥

सभी गिरिवरों में यह गिरि सुरपति (इन्द्र) के समान है और इसके कारण पाप पंक नाश होता है, इसलिये यह गिरि 'इन्द्र' नाम से प्रसिद्ध है। ऐसे गिरिराज को नमस्कार करो ॥95॥

त्रिभुवनमां तीरथ सवे, तेहमां मोटो अेह।
ते तीर्थेश्वर प्रणमीए, 'महातीरथ' जश हेह ॥96॥

जो गिरि तीनों भुवनों में समस्त तीर्थो में श्रेष्ठ तीर्थ के रुप में विद्यमान है व इस कारण 'महातीर्थ' कहलाता है, ऐसे गिरिराज को सदैव प्रणाम करें ।।96।।

आदि अंत नहि जेहनो, कोई काले न विलय।
ते तीर्थेश्वर प्रणमीए, 'शाश्वतगिरि' कहेवाय ।।97।।

जिसका न आदि हे न अंत है और न कभी विनाश होगा, इसलिये शाश्वत गिरि नाम दिया गया है। ऐसे तीर्थेश्वर को प्रेम से प्रणाम करें ।।97।।

भद्र भला जे गिरिवरे, आव्या होय अपार।
ते तीर्थेश्वर प्रणमीए, नाम 'सुभद्र' संभार ।।98।।

अपार भद्रक परिणामी जीव इस गिरि पर आने हैं तथा इस गिरि का 'सुभद्र' ऐसा नाम सुनने में आया है। ऐसे इस गिरिवर को सदैव नमन करें ।।98।।

वीर्य वधे शुभ साधुने, पामी तीरथ भक्ति।
ते तीर्थेश्वर प्रणमीए, नामे जे 'द्रढ़शक्ति' ।।99।।

इस गिरि पर भक्तिभाव से आराधना करनेवाले साधु-मुनिवरों की आत्मशक्ति सुद्रढ़ होती है, इसलिये यह गिरि 'द्रढ़शक्ति' के नाम से प्रशंसनीय है। ऐसे इस तीर्थेश्वर को भक्तिभाव से नमन करें ।।99।।

शिवगति साधे जे गिरे, ते माटे अभिधान।
ते तीर्थेश्वर प्रणमीए, 'मुक्तिनिलय' गुणखान ।।100।।

इस गिरि पर मुनिवर शिवगति-मोक्षगति-मुक्तिनिलय को प्राप्त करते हैं, इसलिये इसका गुणों की खान समान 'मुक्तिनिलय' नाम पड़ा है, ऐसे प्रभावशाली गिरिवर की भक्ति-भाव से सेवा करो ।।100।।

चंद्र सूरज समकितधरा, सेव करे शुभचित।
ते तीर्थेश्वर प्रणमीए, 'पुष्पदंत' विदित ।।101।।

सम्यक्त्व को धारण करनेवाले चंद्रमा और सूर्य शुभचित से इस गिरि की सेवा करते हैं। इसलिये इस गिरि का 'पुष्पदंत' ऐसा नाम प्रसिद्ध है, ऐसे तीर्थेश्वर को भक्तिभाव से नमन है ।।101।।

भिन्न रहे भवजल थकी, जे गिरि लहे निवास।
ते तीर्थेश्वर प्रणमीए, 'महापद्म' सुविलास ।।102।।

कमल कादव में उत्पन्न होते है, पानी से वृद्धि प्राप्त करेत है और दोनों को छोड़कर उपर उठ जाता है, इसी प्रकार इस गिरि के सेवन से भव्य जीव भवजल से तर जाते है। इसलिये इस गिरि को 'महापद्म' की उपमा दी गई है, ऐसे इस तीर्थेश्वर को प्रणाम है ।।102।।

भूमिधर जे गिरिवरो, उदधि न लोपे लीह।
ते तीर्थेश्वर प्रणमीए, 'पृथ्वीपीठ' अनीह ।।103।।

पर्वत व समुद्र जो अपनी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करते, वह वास्तव में इस गिरि का प्रताप है, इसलिये इसका नाम 'पृथ्वीपीठ' भी है, ऐसे इस तीर्थेश्वर को श्रद्धाभाव से प्रणाम करें ।।103।।

मंगल सवि मलवा तणुं, पीठ अेह अभिराम।
ते तीर्थेश्वर प्रणमीए, 'भद्रपीठ' जह नाम ।।104।।

सर्ववस्तु को प्राप्त करने हेतु एक स्थान चाहिये, ऐसा एक स्थानरुप पीठ यह गिरिवर है। यह मोक्ष से लेकर सबकुछ प्रदान करवाता है, इसलिये इस गिरि को 'भद्रपीठ' इस नाम से भी पहचाना जाता है। ऐसे इस तीर्थेश्वर को प्रणाम है ।।104।।

मूळ जस पातालमां, रत्नमय मनोहर।
ते तीर्थेश्वर प्रणमीए, 'पातालमूळ' विचार ।।105।।

इस गिरिवर का मूल पाताल में स्थित है। यह गिरि रत्नमय मनोहर है। इसलिये इस गिरिराज को 'पातालमूल' नाम से जाना जाता है। ऐसे इस तीर्थराज को हे भव्य जनों! हम नमन करते हैं ।।105।।

कर्मक्षय होय जिहां, होय सिद्ध सुख केळ।
ते तीर्थेश्वर प्रणमीए 'अकर्मक' मन मेळ ।।106।।

इस गिरि पर उनकी सेवा के प्रभाव से कर्म का क्षय होता है और पुराने पाप कर्म का मेल भी धूल जाता है। इस कारण से 'अकर्म-कर्म' रहित करने वाला कहलाता है, ऐसे इस तीर्थराज को नमन है ।।106।।

कामित सवि पूरण होय, जेहनुं दरिसण पाम।
ते तीर्थेश्वर प्रणमीए, सर्वकाम मन ठाम ।।107।।

इस तीर्थेश्वर के दर्शन से स्वयं की सभी इच्छाएं पूर्ण हो जाती है, ऐसे इस तीर्थ का सर्वकामप्रद ऐसा नाम भी है, इस तीर्थ का सदैव स्मरण करो ।।107।।

ईत्यादिक अेकवीश भलां, निरुपम नाम उदार।
जे समर्या पातक हरे, आतम शक्ति अनुसार ।।108।।

उपरोक्त बताये गये अनुसार इस तीर्थ के गुण निष्पन्न इक्कीस नाम द्वारा और महिमा द्वारा 108 स्तुति करने से और उसका स्मरण करने से पाप नष्टहोता है तथा आत्मबल प्रकट होता है, ऐसे प्रभावशाली गिरिराज को नित्य सदैव नमन है ।।108।।

पाप की सजा भारी...!

*प.पू.आचार्यश्री अरूणविजयजी म.सा.

गतांक से आगे...!

नारदी वृत्ति में कलहः-

नारदजी का नाम सभी अच्छी तरह जानते है और वैसे हिन्दू धर्म में 24 अवतारों में नारदजी को भी अवतार माना गया है। लेकिन नारदजी का कार्य ही यह था कि एक की बात दूसरे को कहना और दूसरे की बात फिर एक को कहना! इधर की उधर और उधर की इधर करके लड़ाना-झगाड़ना। यह नारदजी कलाह थी। अतः नारदी वृत्ति-नारद के नाम से ही प्रचालित हो गई है। श्री कल्पसूत्र में दस अच्छेरों के प्रसंगों का वर्णन करते हुए पांचवां अच्छेरा (आश्चर्यकारी घटना)-श्रीकृष्ण का अपरकंका में गमन हुआ इसे बताया है। इसके वर्णन में लिखाते है कि महाभारत का काल था। पांडवों के घर एक दिन नारदजी आए। तब पांडवों की पत्नी द्रौपदी ने असंयती जानकर उनका यथोचित पूजन-सत्कार नहीं किया। क्रोधी ऋषि नारद को यह अपमानसा लगा। मन में क्रुद्ध हुए और सोचा कि अब मैं भी द्रौपदी को इसका मजा चखाउं, नारदजी ने इस योजना को साकार करने के लिये द्रौपदी का एक अत्यन्त कामोत्तेजक मोहक चित्र बनाया और घातकी खंड के भरत क्षेत्र में स्थित अपरकंका नामक नगरी के अत्यन्त महाकामी राजा पद्दोत्तर को वह चित्र दिखाया और द्रौपदी के अद्भूत रुप-सौंदर्य की प्रशंसा करके राजा को कामोत्सुक किया। राजा पद्दोत्तर ने देव की सहायता से द्रौपदी का अपहरण करवाया और अपने राज्य में रख ली। इस घटना से पांडव और श्रीकृष्णजी आदि सभी चिन्ताग्रस्त हो गए। कहीं भी द्रौपदी का पता ही नहीं लग रहा था। वे सभी खोज-खोज कर थक गये थे कि इतने में ऋषि नारद भी वहां पहुंचे और बताया कि द्रौपदी का तो अपहरण पद्दोत्तर राजा ने किया है और वह घातकीखंड के भरत क्षेत्र की अपरकंका नगरी में रहता है। यह समाचार नारदजी से सुनकर श्रीकृष्णजी आदि सभी युद्ध के लिये सज्ज होकर निकल पड़े। देवी सहाय से 2 लाख योजन के विस्तार वाले लवण समुद्र को भी पार किया और राजा पद्दोत्तर से भयंकर युद्ध किया। लेकिन प्रबल शक्तिशाली पद्दोत्तर राजा ने पांडवों को परास्त कर दिया। अन्त में श्रीकृष्ण ने नरसिंह का रुप लेकर राजा को हरा दिया। द्रौपदी की वचनरक्षा हेतु से उसे जीवित छोड़ दिया! श्रीकृष्ण और पांडव द्रौपदी को लेकर अपने क्षेत्र में पुनः लौटे। इस तरह नारदजी ने कपट वृत्ति से दोनों को लड़ाया। द्रौपदी का अपहरण भी खुद ने ही कराया और फिर खुद ने ही यह रहस्य श्रीकृष्ण और पांडवों के सामने प्रगट किया। युद्ध भी करवाया और इस तरह अपनी मनीषा पूरी की। आज भी नारदीवृत्ति वाले ऐसे सैकड़ों लोग संसार मे है नारदीवृत्ति रखाते है और इसी वृत्ति से जीते हैं। दो को लड़ाने-झगडाने का ही काम करते है। चोर को कहे चोरी करना और पुलिस को कहे पकड़ने के लिए सावधान रहना और साहुकार से कहे तुम लोग जागते रहना। निरर्थक ऐसी कपटवृत्ति का नाटक खेलने में ऐसे जीवों को क्या मजा आती होगी ? यह तो प्रभु ही जाने। अतः नारदीवृत्तिवाला कलह करने और करवाने का दोनों प्रकार का पाप कर्म उपार्जन करता है। कलह अपने को तो जलाता ही है परन्तु साथ-साथ दूसरों को भी जलाता है। इसे अग्नि के जैसा कहते हुए कहा है कि-

स्ताकोऽप्यग्निर्दहत्येव, कष्ठादिप्रभूतं धनम्।
क्लेशलेशोऽत्र तद्वच्च वृद्धितस्तनुदाहक॥

छोटी सी अग्नि की चिनगारी भी घने लकड़ों को जला देती है उसी तरह यहां पर थोड़ा सा भी क्लेश बढ़ता-बढ़ता वही कलह हमें और दूसरों को सभी को जलाता है। कलह को दाहक कहा है। कलह की अग्नि अन्दर ही अन्दर से अपना दिल जलाती है। खून जलाती है। लोग कहते है मेरा सारा खून जल रहा है और शरीर से भी कृश-दुर्बल होते जाते हैं।

कलह को पापस्थानक क्यों कहा ?ः-

आशा है इतने विस्तृत विवेचन से यह अच्छी तरह समझ में आ गया होगा कि कलह को पापस्थान क्यों कहा गया है ? एक बात तो निश्चित ही है कि कलह की वृत्ति में जीव कोई पुण्य उपार्जन नहीं करता है। आत्मगुणों का विकास इस कलह में नहीं होता है। आत्मा को कलह में कोई लाभ है ही नहीं। ऊपर से कलह करने में, कराने में, कषायों का आश्रय लेना पड़ता है। लेश्याएं अशुभ बनती है। अध्यवसायों की धारा मलीन होती है। आर्तध्यान और रौद्रध्यान की वृत्तियां कलह में ज्यादा रहती है। आर्तध्यान चिंता करानेवाला है और रौद्रध्यान हिंसा करानेवाला है। झगड़ा जब उग्र रुप का धारण करता है तब मारने की बात पर प्रायः लोग आ जाते हैं। मारना, जान से मार डालना, खून कर देना, जला देना ये सब कलह की अन्तिम

अवस्था है यदि कलह शांत न हो तो इसी अंतिम अवस्था में खींच जाता है। फिर तो रौद्रध्यान अपना रुप दिखाता है। हिंसा कराता है। आत्मा की कषाय, अशुभ लेश्या और आर्त-रौद्र के अशुभ ध्यान (अध्यवसाय) में अशुभ पाप कर्म का ही बंध होता है। अतः कलह अवश्य पाप है। इसीलिए ज्ञानी गीतार्थो ने इसे पापस्थान की यादी में रखा है। यह पापस्थान नहीं हो सकता यह कोई मना नहीं कर सकता।

अग्नि की तरह कलह कितना प्रज्वलित होता है ? जैसे अग्नि को आगे जितना जलाने योग्य पदार्थ मिलता है उसे पाकर अग्नि और आगे बढ़ती ही जाती है और प्रज्वलित होती ही जाती है। उसी तरह से कलह भी ऐसा ही है। एक के साथ हुए झगड़े में कोई दूसरा-तीसरा बीच में आवे तो उसे भी लपेट लेता है और अक्सर अपने भाई, बहन, माता, पिता, पत्नी आदि के संबंध का पक्ष लेकर कलह के मैदान में कूद ही पड़ते हैं। यद्यपि अपने पिता की बात झूठी भी होती तो भी पुत्र पिता का पक्ष लेगा और पिता की तरफ से वह भी बोलेगा, चिल्लाएगा। बुद्धि लड़ाएगा। इतना ही नहीं सगे संबंधी की ही तरह यह कलह जातिवाद पर भी चला जाएगा। एक गली से भूंकते कुत्ते के पक्ष में जैसे दूसरे कुत्ते भागते आते हैं। वैसे ही एक परिवार के या जाति के व्यक्तिके लिए उसके परिवार और जाति के लोग भी उसके पक्ष में आकर बैठ जाएंगे। लेकिन यह संबंध का स्वार्थ व्यक्ति को अंधा बना देता है। उसे सत्य नहीं दिखाई देता। अतः कलही-झगड़ालु अक्सर असत्य (झूठ) का भी आश्रय लेता है। इस तरह कलह करने वाला कई अन्य पापस्थानों का आश्रय भी लेता है। अतः एक साथ कितने सामूहिक पाप कर्म करेगा ? कितने कर्म बांधेगा ? कलहशील कितने पापकर्मो से भारी होगा यह वह देखता ही नहीं है।

जातिवाद पर गया कलह जातीय-वैमनस्य की होली में सतत जलता ही रहेगा। क्योंकि ऐसे कलह को तो रोज खुराक मिलती रहती है। अपने व्यक्तिगत झगड़ेको जातिवाद पर ले जाने का महापाप कभी भी नहीं करना चाहिये और किया तो समझना यह कई वर्षो तक चलेगा। झगड़ने वाले तो दोनों-चारों मर भी जाएंगे लेकिन उनके पीछे उन्हीं के निमित्त कई प्राणों की आहूति देंगे। न मालूम यह कितने वर्षो तक चलेगा ? आज भी कई जातियों में चूहे-बिल्ली का सावैमनस्य देखा जाता है। पटेल और ठाकुर, हिन्दू-मुस्लिम, आदि अनेक जातियों में है, कई अवान्तर जातीयों में है और वे लड़ते ही रहते हैं। कभी-कभी जातिवाद का ज्वालामुखी ऐसा फटता है कि सैकड़ों का भोग ले लेता है और कोमी संघर्ष जगा देता है। अतः हम किसी भी प्रकार के कलह को कोमी संघर्ष का रुप न दें यही हमारे हित में है। लाभ में है। अतः कलह के भयंकर पाप को जीवन में से तिलांजलि देना ही हितावह है तभी ही मानव सुख-शांति से चैन की नींद ले सकेगा अन्यथा महानुकशान चालू ही रहेगा।

कलह से नुकशानः-

कलहशील ही खोता है। नुकशान उसे ही है। कोई अंश मात्र भी लाभ नहीं है। सर्वप्रथम तो भयंकर कर्मो का बंध होता है और एक पाप के साथ कई पापों का सेवन होता है। यह बड़ा नुकशान है ? कलहशील को और बड़े नुकशान तो ये है कि वह विनय-विवेक खो बैठता है। प्रायः कलहशील अविनयी, अविवेकी बन जाता है। कलही का संतोष धन नष्ट हो जाता है और असंतोष की आग में ही जलता ही रहता है। झगड़ालु हमेशा मर्यादा का भंग करता है। कलहशील को प्रायः क्रोध-मानादि कषायों का आश्रय लेना पड़ता है, अतः वह सतत कषायों की वृत्ति में रहता है ! कषायों का दाह उसे जलाता रहता है। फिर वही ताप संताप बन जाता है। झगड़ालु प्रायः आर्त-रौद्र-ध्यान का अशुभ विचारधारा में ही रहता है। हमेशा ही चिंताग्रस्त रहता है। अतः शरीर भी जलता रहता है। खून भी जलता रहता है। दिन में धड़कन तेज रहती है। घबराहट सी हमेशा महसूस होती है। रक्तचाप बढ़ता रहता है। शरीर में कप सा रहता है। आंखों की भौंए चढ़ी हुई रहती है। मष्तिष्क पर तनाव सा हमेशा लगता है। उसके कारण अनिंद्रा का रोग भी लागू पड़ जाता है। अनिंद्रा की अवस्था में विचारवायु हो जाता है। वह विचारों की हारमाला खड़ी कर देता है और उपर-उपर इतने ज्यादा विचार आने लगते है कि वह थक जाता है और प्रायः कलहशील को हल्के विचार, खराब विचार, न कहने योग्य विचार ज्यादा आते हैं। उन विचारों में अशुभ लेश्याओं का प्रमाण ज्यादा रहता है। दिन में उठने के बाद भी सिर पर भार सा लगता है। मानों हजार मन का बोझ रखा हो। ऐसी स्थिति में चिंताग्रस्त मनुष्य व्यसनों का आदी बन जाता है, चाहता है कि शराब आदि पीकर कुछ भूलने की कोशिश करुं। लेकिन यह सब व्यर्थ है। क्षणिक है ! दो घंटे के लिये दो बात भूल भी जाएगा। लेकिन तीसरे घंटे- दो और नई समस्याएं खड़ी होगी। धीरे-धीरे दिमाग कमजोर होता जाएगा। स्मरण शक्ति घटती जाएगी।

कलहशील कई रोगों का शिकार बन जाएगा। ''काचक-मला'' -कमला-या पीलिया का रोग हो जाता है। उसकी तरह हमेशा उसे चारों तरफ सफेद वस्तु भी पीली ही दिखाई देती है। क्षण-क्षण में उसे वही कलह का चित्र बार-बार आंखों के सामने दिखाई देगा। बात-बात में झगड़ने की आदत बन जाएगी। ऐसा झगड़ालु स्वभाव बन जाएगा। फिर तो समाज में, लोक में छाप ही खराब पड़ जाएगी। लोग आपको एक ऐसी दृष्टि से ही देखेंगे, ऐसे स्वरुप में ही देखेंगे जैसे अस्पृश्य को देखते हैं और आपसे अस्पृश्य के जैसा व्यवहार करेंगे। कलहशील मनुष्य समाज की दृष्टि से गिर चुका होगा। यश-कीर्ति प्रतिष्ठा ये तो सब उसके लिए दिवा स्वप्न के जैसे बन जाएंगे। झगड़ालु की भाषा बहुत ही खराब-हल्की हो जाती है। गाली-गलौच की गंदी भाषा बार-बार प्रयुक्त होगी। नींद में भी बड़-बड़ करता रहेगा और स्वभाव ही इतना चिड़चिड़ा बन गया होगा कि बात-बात में वह कुत्ते की तरह भौं-भौं करेगा। किसी को भी काटने का ही प्रयत्न करेगा। जीवन में से लक्ष्मीदेवी स्पष्ट होती दिखाई देगी। धन-संपत्ति सब नाश की दिशा में चली जाएगी। कोई सगा-संबंधी उसे प्रेम नहीं करेगा। न चाहेगा। मित्र भी सभी दुश्मन बन जाएंगे और अकेलापन का रोग उसे असह्य हो जाएगा, जब कलहशील व्यक्ति अपनी सहनशक्ति खो बैठेगा तब आत्महत्या का आश्रय लेगा। सोचिए जीवन कितना बरबाद हो जाता है ? और जिंदगी दुःखी होकर बितानी पड़ती है ! आत्महत्या के बाद भी भूत-प्रेत-व्यंतर की गति में भी कहां शांति है ? वहां हजार गुना दुःख ज्यादा है। संसार की भव-परंपरा बिगड़ जाएगी !

कलह से कर्मबंधः-

एक बात निश्चित हो गई कि कलह पाप स्थान है। अतः कर्म का बंध अवश्य कराएगा। पाप अशुभ कर्म है। अतः आठों कर्मो की अशुभ प्रकृतियों का बंध अवश्य कराएगा। चारों घाती कर्म तो सर्वथा अशुभ ही है। अतः ज्ञानावरणीय कर्म का बंध (वरदत्त-गुणमंजुरी की तरह) अवश्य कराएगा। जिसके कारण ज्ञान नहीं मिलेगा। बुद्धि नहीं बढ़ेगी। मंदमति के रुप में जन्म होगा। मूंगापन, बेहरापन, तोतड़ा, बोवड़ापन भी उदय में आता है। वैसे ही कलही दर्शनावरणीय कर्म भी बांधता है। तीव्र निंद्रा आदि के आधीन होता है। देखते-समझने की शक्ति नष्ट होती है। और मोहनीय कर्म सबसे गाढ़ बंधता है। कषाय मोहनीय का बंध होता है जिसके उदय से फिर झगड़े ही चलते हैं। पांचों प्रकार की दानादि शक्तियां नष्ट होती है और अंतराग ज्यादा रहता है। नाम कर्म की अशुभ प्रकृति का बंध होता है जिससे अंगोपांग शरीर का वर्ण आदि खराब मिलते हैं। नीच गोत्र, नीच कुल में जन्म होता है। ढेड़-भंगी-चमार बनकर झुंपड़ पट्टी में जन्मता है। अशाता वेदनीय कर्म कई रोग खड़े करता है। तीव्र शारीरिक वेदना होती है, कुष्ठ रोग, रक्तपित्त, चर्मरोग, मुखरोग, मष्तिष्क रोग आदि कई रोग बढ़ते हैं। दुर्गति का आयुष्य बंधता है। इस प्रकार कलह के पाप से सब खराब कर्मो का बंध होता है !

कलह से अधर्म बढ़ता हैः-

अच्छे धर्मिष्ठ, अच्छे सज्जन, सम्पन्न, धर्म के अच्छे उपासक या साधु-साध्वी भी कलह के स्वभाव को न छोड़ सके तो उनको झगड़ते देखकर दूसरे भी अधर्म पाएंगे। आप कितने भी अच्छे धर्मी तपस्वी होंगे लेकिन कलह करने के कारण आपकी इज्जत मिट्टी में मिल जाएगी और आपके तप की भी निंदा होगी। धर्म की लोग हंसी उड़ाएंगे। साधु-साध्वी की भी अप्रतिष्ठा होगी और साधु-साध्वी को झगड़ते देखकर दूसरे अधर्म पाएंगे। धर्म से विमुख बन जाएंगे। अतः किसी को धर्म प्राप्त कराना है, किसी को धर्मी बनाना भी है तो भी हमें क्लेश-कलह से दूर रहना चाहिये। यदि हम किसी को धर्म न बता सकें तो कोई हरकत नहीं है, परन्तु अधर्म तो मत बताना। अपनी समता और सहनशीलता के कारण भी कोई धर्म पाएगा। **(आगे और भी है...!)**

शिष्य अपनी गुरु से शिकायत भरे स्वर में कह रहा था, गुरुदेव ! आपने ही तो उस दिन कहा था, जो व्यक्तित्यागी होते हैं और प्रतिष्ठा से दूर भागने का प्रयास करते हैं, सामाजिक सम्मान उनके पीछे दौड़-दौड़ आता है। मैं गत 15 वर्षो से अपना सर्वस्व समाज सेवा पर न्योछावर करता आ रहा हूं पर सम्मान मेरे पीछे अभी दौड़कर नहीं आया।

गुरु का उत्तर था- बात ठीक है, पर तुम्हारी दृष्टि सदैव पाने पर लगी रही, देना तो तुम्हारा नाटक मात्र था। शिष्य को अपनी भूल समझ में आई।

प्रमोद भावना : सर्वत्र गुण देखो....

मैत्री भावना के चिन्तन व अनुप्रेक्षण से हमारी अन्तर वृत्तियाँ सबके प्रति प्रेम व स्नेहमयी बनती है। हम सबको अपना बंधु, भाई व हितेषी समझने लगते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि हमारी दृष्टि सबके प्रति उदारता व गुणज्ञता-कृतज्ञता से भर जाती है।

जैसे जगत की वनस्पतियाँ और जीव-जन्तु, फूल-पौधे उगते हुए सूर्य को देखकर नये उल्लास और हर्ष से विकसित होने लगते हैं। जैसे फूलों को खिला देखकर भंवरा उनका रस ग्रहण करने लगता है। वैसे ही हम गुणीजनों को देखकर, उनके सदाचार को देखकर प्रसन्न होवें।

सूर्य में ताप भी है, फूलों में कांटे भी है, परन्तु हम तो सूर्य की ऊर्जा और प्रकाश से प्रफूल्लित होते हैं। ताप से हमें क्या ? फूलों में कांटे है तो हैं, हम उन कांटों से स्वयं को बचाकर रस व सुगंध के ग्राहक बनकर फूलों का आनन्द उठाते हैं, इसी प्रकार की जीवन-दृष्टि हमारे भीतर जागृत होती है, तब हम किसी ज्ञानी पुरुष को देखकर, उसके सामने अपना सिर नवाते हैं, उनसे ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। किसी ध्यानी, त्यागी, तपस्वी, मौनव्रती, परोपकारी पुरुष को देखकर प्रसन्न होते हैं। उसके सद्‌गुणों की महक से मन को सुवासित करने लगते हैं।

किसी को दान करते देखकर, तपस्या करते देखकर, सदाचार का पालन करते देखकर, नैतिकता व प्रमाणिकता का आचरण करते देखकर सहज ही मन से उसकी प्रशंसा का अहोभाव धन्य-धन्य के रुप में निकलने लगता है। इस प्रकार की उदात्त मनोवृत्ति से हमारा अन्तर मन सदा प्रसन्न रहता है। भले ही हम गुणी न हों, परन्तु गुणीजनों के प्रति आदर भाव रखकर अपने जीवन में गुणों को आमंत्रित अवश्य करते हैं।

सदाचार और सद्‌गुणों को प्रोत्साहन देने से, सज्ज्नों की प्रशंसा और सम्मान करने से हमारे भीतर अच्छाईयां और सद्‌गुणों के संस्कार जागृत होते हैं और परिवार, समाज व संघ में सद्‌गुणों का विकास/विस्तार होता है।

जिस प्रकार से मैत्री भावना के विधायक (पॉजिटिव) और निषेधात्मक (निगेटिव) दो पहलू है, उसी प्रकार प्रमोद भावना के भी दो पहलू है।

विधायक दृष्टि से सोचे तो-

✻ आ.श्रीमद् विजयजिनोत्तम सूरीश्वरजी म.

गणीजनों को देख हृदय में मेरे प्रेम उमड़ आवे।
बने जहां तक उनकी सेवा करके यह मन सुख पावे।
होऊँ नहीं कृतघ्न कभी मैं द्रोह न मेरे उर आवे।
गुण-ग्रहण का भाव रहे नित दृष्टि न दोषों पर जावे॥

यह गुणज्ञ दृष्टि है जहां भी कहीं गुण दीखे, उसको देखकर मन से प्रसन्न होना, आँखों से प्रफुल्लिता और हर्ष व्यक्त करना और मुख से उनकी प्रशंसा करना।

प्रमोद भावना का निषेधात्मक (निगेटिव) पक्ष यह है कि **दूसरों की देख बढ़ती हो न ईर्ष्या लेश भी।** दूसरों की उन्नति करते देखकर मन में उनके साथ ईर्ष्या और प्रतिद्वन्द्वता का भाव नहीं आवे। अपितु उनको प्रोत्साहित करें।

कवि कहता है-

हम तो ग्राहक है, चन्दन के, भले ही साँप लिपटे हों।
मुग्ध हैं, पुष्प सौरभ पर हमें काँटों से क्या मतलब ?
गोल मोती के गर्जी है, साँप बॉबी से क्या मतलब।
काम तकिए की रु से है, हमें खोली से क्या मतलब ?

इस कविता का भाव यही है कि हमें चन्दन की सुगंध से मतलब है, साँप लिपटे हैं तो क्या ? फूलों की सुगंध से मतलब है, काँटें है तो क्या ? हम साँपों और काँटों से बचकर उनका लाभ उठाएँ। सीप चाहे टेढ़ी है या चपटी है, हमें तो उसके भीतर छीपे गोल मोती से काम है, तकिये के भीतर मुलायम रुई का उपयोग हमें करना है, ऊपर की खोली बेल-बूटेदार हो या सादी हो हमें क्या फर्क पड़ता है ?

इस प्रकार की प्रमोद भावना को मुदिता दृष्टि अथवा गुणज्ञ दृष्टि कहा गया है। यह दृष्टि जिसके जीवन में जागृत होती है वह सर्वत्र प्रेम, आदर व सम्मान प्राप्त करता है। उसका स्वयं का जीवन भी सुखी और सम्मानास्पद रहता है। वह जहां भी रहता है उस समाज व संघ की उन्नति करता है। भले ही हम गुणी न हो, परन्तु गुणीजनों के प्रति आदर भाव रखकर अपने जीवन में गुणों को आमंत्रित अवश्य करते हैं।

✻ देह की जितनी फिक्र करता है, उतनी नहीं किन्तु उससे अनंत गुनी फिक्र आत्मा की रख, क्योंकि अनंत भवों को एक भव में टालना है।

मैं स्कंधकाचार्य

✽ पू.आ.श्रीमद् विजयमुक्ति/मुनिचन्द्रसूरीश्वरजी म.

''प्रभो ! मैं मेरे संसारी बहन-बहनोई को प्रतिबोध देने जाऊं ?'' भगवान श्री मुनिसुव्रत स्वामी को मैंने पूछा।

''तुझे और तेरे सभी शिष्यों को मरणान्तिक उपसर्ग होनेवाला हैं।'' भगवान ने भयस्थान बताया।

कृपालु ! उपसर्ग से तो हम जरा भी नहीं डरते हैं। दीक्षा के दिन से ही आपने हमारे अंदर से मृत्यु का भय खींच लिया है। साधक को मृत्यु का भय कैसा ? वह तो मौत मुठी में लेकर फिरता है। मौत से डरनेवाला योद्धा नहीं बन सकता और साधक भी नहीं बन सकता। आपकी ऐसी वाणी आज भी हमारे कानों में गुंज रही है। इस कारण जानलेवा उपसर्ग से तो हम जरा भी नहीं डरते। लेकिन कृपा करके हमें यह बताईए : हम उस समय आराधक होंगे या विराधक ? मृत्यु का जरा भी डर नहीं है, परन्तु विराधना का बहुत ही भय है।

''आपको छोड़कर आपके सभी शिष्य आराधक बनेंगे।'' भगवान ने संक्षिप्त जवाब दिया।

मैं भले विराधक बनूं, लेकिन मेरे 500 शिष्य तो आराधक बनेंगे न ? करोड़ें रुपये मिलते हो तो एकाध रुपिया खोने में क्या बुरा हैं ? मैं एक भले विराधक बनूं। मेरे शिष्य तो आराधक बनेंगे। अतः काम पूरा हुआ ! दूसरे का भला हो वही बड़ी बात है ! सज्जन पुरुष अपना गौण करके भी दूसरों का ही भला सोचते हैं।

मैंने अपने आपको ही सज्जन का टाइटल दे दिया और अपने हिसाब से ही अर्थ निकाल दिया। भगवान की वाणी में से कैसा अर्थ निकालना वह हमाने मन पर ही निर्भर हैं।

....और मैं दूसरे ही दिन निकल पड़ा, मेरी संसारी बहन पुरंदरयशा के कुंभकारकट नामक नगर में।

मेरे मन में बहुत ही होंश थी प्रतिबोध देने की.... लेकिन हमारा सोचा सभी थोड़ा ही होता हैं ?

कुंभकारकट नगर में जाने से पहले मैं अपने परिवार के साथ बाहर के उद्यान में ठहरा....

हमारे आगमन से सर्वत्र नगर में आनंद-आनंद छा गया था.... लेकिन एक व्यक्ति को आनंद नहीं था। उसका नाम था पालक। वह राजा का मंत्री था। गृहस्थावस्था में मैंने उसे राजसभा में हराया था। वह कट्टर नास्तिक था, मैं कट्टर आस्तिक था। वह जब आत्मा, पुण्य-पाप इत्यादि का बेहिसाब खण्डन करने लगा तब मैं रह नहीं सका। सच्चा आस्तिक चूप भी कैसे रह सकता हैं ? मैंने उसके नास्तिकवाद का मुंहतोड़ जवाब दिया। इससे उसका मुंह तो बंध हो गया.... लेकिन मन ही मन वह सनसनाने लगा.... उसके मन में वैर की गांठ बंध गई। सभा में हुआ अपमान (सचमुच तो वह अपमान नहीं था.... लेकिन उसने अपमान मान लिया था। इसीलिए ही ऐसे लोगों के साथ वाद करने की ज्ञानियों ने मना की है।) आज भी वह भूला नहीं था। इसीलिए ही कोई षड्यंत्र बनाकर मुझे फसाकर वह भयंकर शिक्षा करना चाहता था। ऐसा करने पर ही उसके वैर की आग शांत हो सकती थी।

हालांकि उस बात का मुझे कुछ पता नहीं था। पालक के मन में इतना डंक अभी रहा हुआ है और वह ऐसा बदला लेगा उसका मुझे कुछ पता नहीं था। ये सब बातें तो मुझे बहुत समय के बात जानने मिली।

षड़यंत्र के प्रथम भाग के रुप में अपने सेवकों के साथ रात के समय आकर उसने हम जहां ठहरे थे उस उद्यान में हर जगह पर शस्त्र गड़वा दिये। फिर राजा के पास जाकर बहकाने वाली बातों से कान भरने शुरु कर दिये।

राजन् ! आपके साले स्कंधक आचार्य बनकर 500 शिष्यों के साथ यहां पर आये हैं, वह समाचार मिले ?

क्यों नहीं मिलेंगे ? उनके आगमन से मुझे बहुत ही आनंद हुआ है। मैं उनका जोरदार स्वागत करुंगा और विशाल परिवार के साथ कल देशना सुनूंगा। ऐसा सत्संग कहां से मिल सकता है ?

राजन् ! आप भोले हैं। नीतिशास्त्र में कहा हैं- हर बात में शंका उठाओ। ''बृहस्पतेरविश्वासः'' बृहस्पति का सार अविश्वास है। जो विश्वास में रह जाता है वह उठाये बिना नहीं रहता। अर्थात् तू क्या कहना चाहता है ? मैं इन महात्मा के ऊपर भी अविश्वास करुं ऐसा ?

हाँ.... ऐसा ही। मैं यही कहना चाहता हूं। आप जिन्हें महात्मा कहते हो, मैं उन्हें अधमात्मा कहूंगा। सच बात तो यह है कि आपके ये महात्मा संयम-जीवन से ऊब गये है। इस कारण से यहां पर आये हैं। उनका उद्देश्य है- आपका राज्य हड़प लेना ! ये 500 शिष्य वे हकीकत में उनके शिष्य नहीं है, लेकिन उनके सैनिक हैं। आप वंदन करने जायेंगे तब आपका शिरछेदन हो जायेगा ! फिर राज्य सीधा उनके कब्जे में हो

जायेगा ! पालक ! कुछ सोचकर बोल। ऐसे महात्मा पर ऐसा कलंक देते शरम नहीं आती ? तूं किस आधार पर ये सभी गपोड़े हांक रहा हैं ?

नरनाथ ! मुझे पता ही था कि मेरी बात आपको अच्छी नहीं लगेगी। ''हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः'' हितकारी भी हो और मीठा भी हो ऐसा वचन सचमुच ही दुर्लभ है। किन्तु राष्ट्र का मंत्री होने से मेरी फर्ज है कि आपको सत्य बात बताऊं। आपको बुरा लगेगा तो ? उस डर से यदि मैं आपको सत्य हकीकत न बताऊं तो मैं अपना धर्म चुका गिना जाऊंगा। मैंने यह बात सिर्फ अनुमान से ही नहीं कही, पूरे सबूत के साथ कही है। मेरी बात पर विश्वास न आता हो तो आज रात मेरे साथ आना। मैं आपको सबूत बताऊंगा।

मंत्री की बात पर भरोसा करने राजा उद्यान में आये। पूर्वयोजना के अनुसार जमीन में छिपाये गये शस्त्र देखकर महाराजा क्रोधित हुए- ये साले स्कंधक ऐसे दुष्ट हैं ? आखिर साला 'साला' ही निकला। लेकिन कोई बात नहीं। उन्हें कैसी सजा की जाय वह सभी काम मैं तुझे सौंपता हूं।

पालक को मनभाता काम मिल गया। उसे तो वांछित वस्तु मिल गई। उसकी योजना सफल हुई !

हममें से किसी को भी इस बात का कुछ भी पता नहीं था। हाँ.... प्रभु की बात से इतना जरुर पता था कि जानलेवा उपसर्ग आनेवाला है....लेकिन यह किस स्वरुप में आयेगा ? उसका कोई पता नहीं था।

दूसरे ही दिन पालक अपने साथियों के साथ मेरे पास आ पहुंचा.... कटाक्ष भरी आवाज से चिल्लाया-महाराज ! धर्म के ढोंग बहुत किये.... अब यह ढोंग-बोंग छोड़ दो। चलो मेरे साथ.... आपको आपके धर्म का साक्षात् फल बताता हूं। उस दिन तो आपने मुझे हराया था न ? अब आज आप देखना- कौन जीतता है ? धर्म या अधर्म ? राजा का आदेश है, आप सभी का वध करना। चलो, मेरे साथ।

भगवान की कहीं हुई बात मुझे याद आई : मरणांत कष्ट आयेगा। हम सभी उसके लिये मानसिक तैयारी करके ही आये थे। पूर्ण स्वस्थता से, जरा भी संताप या उद्वेग के बिना हम सभी तैयार हो गये। पालक एक बड़े बाड़े में हमें ले गया। वहां मनुष्य को पीस सके वैसी एक घानी थी। पालक ने गर्जना करते हुए कहा- इस घानी में आपको तिल की तरह पीस लिया जायेगा। आपका धर्म इसमें से आपको बचाएगा। लो आ जाओ.... एक के बाद एक.... मैं आज आपको मजा चखाऊंगा.... आपके धर्म का असली मजा.... जिंदगी में पहलीबार और अंतिमबार.... चलो, एक के बाद एक आते जाओ।

ऐसे मर्मवेधक वाक्य सुनने पर भी जरा भी गुस्सा किये बिना मेरे शिष्य कमसर खड़े रह गये। किसी के भी मुख पर भय, क्रोध या व्याकुलता की धुंधली रेखा भी दिखाई नहीं दे रही थी। सभी संपूर्ण स्वस्थ थे ! मानो कि मृत्यु मेहमान का स्वागत करने के लिये खड़े हुए यजमान ! मैं सामने खड़ी हूं फिर भी कोई भय नहीं ? इसमें तो मेरा अपमान है-ऐसे सोचकर नीड़र और स्वस्थ मुनियों को देखकर मृत्यु भी शायद शरमा गई होगी।

पालक एक के बाद एक मुनि को पकड़कर घानी में डालते ही जा रहा था। भचड़.... भचड़.... शरीर पीसा जा रहा था। तड़.... तड़.... तड़....हड्डियां टूट रही थी। खून और मांस के फव्वारे उछल रहे थे ! अच्छे अच्छे की छाती कांप उठे ऐसे दृश्य थे.... किन्तु रे ! इस पालक की छाती को कुछ भी नहीं हो रहा था ! मानो कि वह वज्र बनी हुई थी।

मेरा एक-एक शिष्य जानलेवा उपसर्ग के सामने तनकर खड़ा था, जीवन की अंतिम पल को धन्य बनाने का यही एक सुअवसर है- ऐसा मानकर स्वस्थ था। आज मुझे लगा- वर्षों से मैंने मेरे शिष्यों को जो तैयार किये, पढ़ाये, लिखाये, ग्रहण-आसेवन शिक्षा दी, आज वह सभी सार्थक बना था ! मेरी मेहनत सार्थक बनी थी।

वह पालक एक-एक मुनि को पकड़कर घानी में डालते जा रहा था और मृत्यु के खप्पर में होमाते हुए मेरे शिष्यों को देखकर मेरे हृदय में झटके लग रहे थे, हृदय फट जा रहा था, परन्तु सभी दुःख, सभी प्रेम मन में ही दबाकर मैं उपदेश देने लगा- हे मुनिवर ! खूब समता में रहना। समाधि में रहना। समाधि बनाये रखने का यह बहुत ही सुंदर अवसर है, जन्म-जन्म में हम असमाधि से ही मरे हैं। इस कारण से ही हमारा संसार अकबंध रहा है। एक बार भी समाधिभरी मृत्यु मिली होती तो यह संसार कभी का नष्टहो गया होता। आपको पीसनेवाले इस पालक पर जरा भी गुस्सा मत करना। यह तो हम सभी का परम उपकारी है, कर्मक्षय में सहायता करनेवाला है। महात्मन् ! शरीर पर थोड़ा भी ममत्व मत करना। यह शरीर को कपड़ा हैं। कपड़ेपहननेवाली आत्मा अलग है। कपड़े फटजाये तो हम थोड़े ही फटते हैं ? यह शरीर तो मकान है। मकान से मकान मालिक भिन्न है। भाग्यवान ! देह और शरीर

के भेदज्ञान का यह अनमोल अवसर है। आप देखो.... बराबर तटस्थता से देखो.... आपका शरीर पीसा जा रहा है, किन्तु आप अमर हैं.... आपको कोई पीस नहीं सकता, इस दुनिया में कोई ऐसा शस्त्र नहीं है जो आपको मार सके, कोई ऐसी आग नहीं है जो जला सके, कोई ऐसा पवन नहीं है जो आपको सोख सके। आप अजर है, अमर हैं....

देह विनाशी हूं अविनाशी अपनी गति पकड़ेंगे,
नासी जासी हम थिरवासी, चोखे व्हे निखरेंगे।

अब हम अमर भये न मरेंगे। यह दृष्टि रखेंगे तो सचमुच ही तुम अमर बन जायेंगे।

मेरे इस उपदेश का सभी को जोरदार असर हुआ। सभी समता में झीलते रहे। किसी भी साधुओं उफ.... भी नहीं किया। मुख पर इतनी अपार समता बरस रही थी कि देखनेवाले को लगे-सचमुच ही इन साधुओं ने प्राप्त कर लिया ! हालांकि मैं छद्मस्थ था, मुनियों की आंतरिक परिस्थिति क्या है वह जान नहीं सकता था, लेकिन हृदय में ऐसा लगता था हर एक महात्मा केवलज्ञान पाकर मोक्ष में पधार रहे हैं।

ऐसा करते-करते 499 मुनि पीसे गये। घानी में से खून की धारा चल रही थी.... खून की नदी ही देख लो ! पास में हड्डियों का ढेर हो गया था ! अब एक मात्र मेरे प्यारे बाल मुनि शिष्य बाकी थे। वे मुझे बहुत ही प्यारे थे। मैं उनकी मृत्यु देख सकूं वैसा नहीं था। इससे मैंने कहा- पालक ! इस सुकुमार बाल मुनि की मृत्यु मैं नहीं देख पाऊंगा। इससे ऐसा करो- पहले मुझे पीस दो.... फिर बाल मुनि ! अभी तक मैं कुछ बोला नहीं, लेकिन मेरी सिर्फ इतनी ही विनंती है।

ऐसा ? आपको बहुत दुःख होता है ? मुझे आपको ज्यादा दुःखी ही करना है। अब तक मैं चिंतित था- आप दुःखी क्यों नहीं हो रहे हो ? आप यदि दुःखी न होते हो तो मेरा यह सब प्रयत्न ही व्यर्थ था। आपको बहुत दुःख होता हो तो मैं अभी बाल मुनि को घानी में डालता हूं। अट्टहास्य करते पालक ने बालमुनि को घानी में डाला।

अंदर से मैं सनसना उठा, फिर भी सभी झुँझलाहट अंदर दबाकर मैंने बालमुनि को अंतिम निर्णामणा करवाई। वे समाधिपूर्वक केवलज्ञान पाकर मोक्ष में पधारे।

अब मेरी बारी थी। अब तक दबाया हुआ क्रोध एकदम उछल पड़ा : हरामखोर पालक ! मेरे 500-500 शिष्यों को क्रूरतापूर्वक पीस देनेवाला बदमाश ! मरते आदमी की इच्छा तो कट्टर शत्रु भी पूरी करता है.... मेरी छोटी-सी इच्छा, बालमुनि को मेरे बाद पीसने की इच्छा भी हमने पूरी नहीं की ! हमने इसका इतना क्या बिगाड़ा है कि हमें ऐसी देहान्त की शिक्षा ! नहीं.... मात्र पालक ही पापी नहीं है, यहां का राजा भी पापी है।

उसका भी इसमें हाथ होना चाहिये। अरे.... नगर की प्रजा भी कैसी है ? देश भी कैसा है ? जहां 500-500 साधुओं की कत्ल होती हो वहां किसी का रोम भी खड़ा नहीं हो ? सभी हृदयहीन और कठोर ? मेरी संयम-साधना का कोई प्रभाव हो तो मैं आगामी जन्म में सभी को जलानेवाला बनूं ? ऐसे नियाणे के साथ मेरी मृत्यु हुई ! मरकर मैं भवनपति में अग्निकुमार देव हुआ। अवधिज्ञान से मैंने पूर्वभव का वृत्तांत जाना : मेरी बहन पुरंदरयशा को तो खून से लथपथ रजोहरण देखकर मेरी अधम मृत्यु जानकर अत्यंत आघात लगा। राजा को सख्त शब्दों में उलाहना देकर विरक्त पुरंदरयशा ने भगवान श्रीमुनिसुव्रत के पास दीक्षा ले ली।

ज्ञान से पूर्वजन्म की घटना जानकर मेरे अंग-अंग में क्रोध की ज्वाला प्रकट हुई ! क्षणभर में तो मैंने पूरा नगर जला डाला। ऊपर से धूल बरसाई। पूरा नगर दब गया। उस वीरान मैदान का लोगों ने नाम रखा- ''दण्डकारण्यं'' !

500-500 शिष्यों को तारनेवाला, केवलज्ञान की भेंट देनेवाला में स्वयं डूब गया। अन्त में.... थोड़ा सा चूका और मेरी नाव किनारे आकर डूब गई। हाथी पूछ में ही अटक गया।

*** मेक्सिको के खरबपति कारलोस स्लिम बिल गेट्स को पीछे छोड़ संसार के सबसे धनी व्यक्ति हो गये। स्वभाव में विनम्र धरती से जुड़े कारलोस का कथन है कि नंबर एक या दो से कुछ फ रक नहीं पड़ता। सच्ची बात यह है कि धन का उपयोग किस काम में किया जा रहा है। २००७ के अंत तक उन्होंने ढाई लाख लेपटॉप कम्प्यूटर मेक्सिको के गरीब बच्चों को दान में दिये। २००८ में उनका संकल्प १० लाख कम्प्यूटर का था। उनका मत है कि डिजिटल शिक्षा ही मेक्सिको की गरीबी दूर कर सकती है।**

संसार में मतलब के रिश्ते ज्यादा है

✻ प.पू. साध्वी डॉ. सुभाषाजी म.सा.

जिसे आप अपना मान रहे है, वह कभी दगा दे सकता है। जिस पर आपका भरोसा है वह कभी धोखेबाज भी हो सकता है। सांसारिक रिश्तों पर कभी अधिक विश्वास मत करना क्योंकि थोड़ा सा स्वार्थ ही कभी-कभी बहुत अधिक कष्टकारी सिद्ध होता है। महापुरुषों ने इसलिये तो संसार को मतलब की दुनिया कहा है। जब तक मतलब होता है, तब तक भले ही ऊपर-ऊपर से प्रेम-प्यार दिखाई देता हो लेकिन वह कभी स्थाई नहीं होता। पता नहीं कब आज का प्रेम कल दुश्मनी में बदल जाए। स्वार्थ बड़ा निर्मम होता है और अच्छे-अच्छे सांसारिक रिश्ते मिनटों में भयंकर रंजिश व तबाही के कारण बन जाते है। इतिहास के पन्ने गवाह है जब अपनों ने ही अपनों पर खंजर चलाने में तनिक भी देरी नहीं की। आज भी संसार में जरा गहराई से चिन्तन करके देखो, मतलब की दुनिया अधिक नजर आएगी। अतः सांसारिक रिश्तों से अधिक जुड़ाव मत रखना। परस्पर मित्र की तरह जैसे 32 दांतों के बीच अपनी जीभ रहती है, उस सावधानी के साथ रहे लेकिन प्रेम करना हो तो अपने परमात्मा से करना। ध्यान रखना-साधु-संत-साध्वियों से जुड़ाव कभी बैगाना नहीं होता। साधु-संत से हमेशा सम्यक ज्ञान, दर्शन व चारित्र के वे सद्गुण मिलेंगे जिनके द्वारा जीवन की दशा व दिशा बदल जाती है। उनके साथ का रिश्ता चूंकि निष्काम होता है, इसलिए वे सच्चे पथ प्रदर्शक होते हैं। उनके द्वारा ही परमात्मा से मुलाकात हो पाती है। जब आत्मा का आत्मा से सीधा संबंध हो जाता है तभी परमात्मा की अनुभूति हो पाती है। फिर वे भव्य आत्मा निर्वाण को भी प्राप्त कर सकती है। अपनी आत्मा से रिश्ता रखनेवाला ही सच्चा धर्मात्मा है। अतः संसार की मतलबी दुनिया में ही अपनी आत्मा को मत खो देना।

उपरोक्त मंगल उद्गार जैन साध्वी डॉ. सुभाषाजी महाराज ने धर्म सभा में व्यक्त किये। उन्होंने कहा कि पग-पग पर स्वार्थी लोग अधिक है। इसलिए अपने ज्ञान से हमेशा यह देखना कि हकीकत में मेरा वास्तविक हितेषी है कौन ? अपने परमात्मा ही सबसे बड़े हितेषी है और उन तक पहुंचने के लिए साधु-संतों की संगत को अपना परम सौभाग्य मानना। ज्ञान के पथ पर चलने से ही वैराग्य की प्राप्ति होती है। संसार का वह सबसे सुखी व्यक्ति होता है जिसकी कोई सांसारिक भौतिक इच्छा नहीं होती। अपनी आत्मा से परमात्मा तक पहुंचने की कोई आकांक्षा नहीं कहलाती, वरन यह तो धर्म है। बदले में जब कोई इच्छा नहीं रह पाती, उसे ही गीता में श्रीकृष्ण ने निष्काम कर्म योग कहा है। संसार का सबसे सुखी व्यक्ति वही होता है जो निष्काम भावना से जीवन यापन करता है। संसार में रहते हुए भी वह तपस्वी है। हम यदि ऐसे तपस्वी ना भी बन सके तो कम से कम इतना प्रयास अवश्य करते रहे कि हमारा रिश्ता संसार से कम और अपनी आत्मा से अधिकाधिक हो। यही सच्चा रिश्ता है जो कभी भी धोखा नहीं देगा, वरन आत्मा की उन्नति में बहुत-बहुत कारगर सिद्ध होगा। अपनी आत्मा की जो व्यक्ति सार संभाल रखता है, वह फिर यह समझ जाता है कि संसार में जीने का आखिर मकसद क्या है। कैसे जीना है और कैसे शाश्वत सुख को पाना है। उसके लिए फिर मार्ग कठिन नहीं रह पाते वरन सुगम हो जाते हैं।

साध्वीजी ने कहाकि गुणवानों की संगत सदा लाभप्रद होती है लेकिन विडम्बना यही तो है कि आदमी अच्छे लोगों की जगह बुरे व्यक्तियों के नजदीक ज्यादा रहता है। बुरा व्यक्ति जो खुद संस्कारों के महत्व को नहीं जानता फिर भला वह धर्म के मर्म को कैसे जान सकता है ? इसीलिए तो बुरे व संस्कारहीन व्यक्ति से दूरी बनाए रखने की महापुरुषों ने प्रेरणा दी है। संसार में आदमी का दुःखी व परेशान रहने का सबसे बड़ा कारण यही है कि वह गुणवानों से दूरी रखता है और ऐसे लोग कथित मित्र बन जाते है जो खुद अज्ञानी, अधर्मी व स्वार्थी अधिक है। जब ऐसे लोगों के साथ अधिक रहेंगे, फिर उनके दोष अपने जीवन में आना स्वाभाविक है। टी.वी. देख-देख कर युवा पीढ़ी का पथ-भ्रष्ट होने का यही तो कारण है। जैसी संगत, वैसा रंग चढ़ता जा रहा है। जब टी.वी. ही मित्र हो गया, फिर भगवान के सद्गुण कहां से आएंगे ? मतलब के रिश्तों से दूरी फिर कैसे संभव होगी ? यह मत भूलना-अपनी जिन्दगी को सुधारने, उसे सही दिशा में ले जाने व आत्मा के तत्व को जानने का पुरुषार्थ स्वयं को ही करना पड़ेगा और यह अवसर हम मनुष्य भव में ही संभव है। फिर इसे व्यर्थ में ही मत खो देना।

इससे पूर्व साध्वी श्री आकांक्षाजी महाराज ने कहा कि इस संसार में भांति-भांति के लोग सदा से रहते आए हैं। चाहे राम हो या कृष्ण, बुद्ध हो या जीसस, अल्लाह हो या गुरुनानक, महावीर हो या पार्श्वनाथ उनके युग में भी दुष्ट व पापी लोगों की संख्या कम नहीं थी लेकिन महापुरुष महान तभी बन पाए जब उन्होंने पापी व दुष्टों के द्वारा कष्ट व पीड़ा देने के बाद भी खुद की आत्मा से अपना रिश्ता अटूट रखा। अपनी आत्मा से रिश्ता रखने वाला ही महान हुआ है। हमें भी उस महानता का अनुसरण करना चाहिये।

बिटिया रानी...!

प्यारी प्यारी बिटिया...!

अभी-अभी मैं एक पुस्तक पढ़ रहा था। उसमें इरान के तत्वज्ञ लुक्कमानजी का एक प्रसंग पढ़ा। मुझे लगा कि वह मैं तुझे जो कहना चाह रहा हूं उसमें बड़ा उपयोगी है। अतः मैं तुझे सुनाता हूं।

लुक्कमानजी बड़े ही तत्वज्ञ माने जाते थे।

उनके पास एक जिज्ञासु आया। उसने पूछा- हमारे शरीर में सबसे श्रेष्ठ अंग कौन सा ?

लुक्कमानजी ने कहा-जीभ...!

और सबसे खराब अंग कौन सा ?

जीभ...! तत्वज्ञ ने उसी अदा से उत्तर दिया।

जिज्ञासु तो लुक्मानजी को देखते ही रहे गया। अंग एक है और उसमें अच्छाईयां और बुराईयां दोनों है। यह कैसे हो सकता है।

लुक्मानजी ने जिज्ञासु को समझाते हुए कहा- हमारे शरीर का श्रेष्ठ अंग जीभ इसलिये है कि वह मुरदों में भी जान फूक सकती है और खराब अंग इसलिए है कि वह जिन्दा आदमी को जला सकती है।

बेटी...!

तू तो जानती ही है ना कि महाभारत के युद्ध के पीछे कौन सा परिबल था ? अंधे के बेटे अंधे ही होते है। बस यह छोटा सा वाक्य जीवन बाग में आग लगा गया।

कौरवों का संपूर्ण विनाश हो गया। पांडव विजयी बन गये मगर द्रौपदी को भी अपने पांचों पुत्र जो पांचाल कहलाते थे युद्ध में खोना पड़े थे। क्या मिला द्रौपदी को ?

सिवाय आंसु ही या और कुछ ?

विजयी पांडव खुशी का जश्न भी नहीं मना सके। क्योंकि कौरव तो सभी मारे गए मगर पांडव पक्ष में भी कोई स्वजन नहीं बचा था, पांडवों के अलावा जो खुशी में उन्हें साथ दे।

प्यारी बेटी...!

शब्द शस्त्र से भी घातक माने गये है। महाभारत में लिखा है-

रोहते सायकैर्विध्दं वनं परशुना हतम्।
वाचा दुरुक्तं वीभत्सं न संरोहति वाक्क्षतम्॥

कुल्हाड़ी और तीरों से छिन्न-भिन्न हुआ जंगल फिर से नव पल्वित हो जाता है मगर कटु और तीक्ष्ण शब्दों के घाव कभी भी नहीं भरते है।

कहा भी तो है-

शब्द-शब्द तू क्या करें, शब्द के हाथ न पांव।
एक शब्द औषध करें, एक शब्द करें घांव॥

एक बंगाल का कारीगर बादशाह के दरबार में आया। उसमें बादशाह को एकदम बारिक ढांका की मलमल का एक थान भेंट किया देखकर बादशाह भी खुश हुआ और पूछा- यह कितना बड़ा है ?

कलाकार ने कहा-'जहापनाह...! इसमें आपकी-आपके बाप की और उनके भी बाप की कबर ढंक जाएगी।'

अब तू ही बता बेटा...!

क्या बादशाह उसे ईनाम देगा ? या सजा...?

My Dear there are Eight secrets of good Speech

✻ महुरं...! Speak Sweet वाणी वशीकरण मंत्र है। जैसे हमें मीठे वचन श्रवण करना अच्छे लगते है ठीक वैसे ही दूसरों को भी मधुर वचन पसंद है। इसके लिए एक ही बात है यदि बोलना ही पड़े तो मात्र और मात्र मधुरवचन बोले।

निडणं...! Speak Smart जिसकी जानकारी पक्की हो वह बोले। क्योंकि जब अपनी बात असत्य के रुप में सामने आएगी तब वास्तव में स्वयं ही झूठे सिद्ध हो जाओंगे। धीरे-धीरे भी ना बोले क्योंकि सामनेवाले को समझ में न आए ऐसा बोलने से क्या फायदा ? हंसते-हंसते भी न बोले क्योंकि हंसते-हंसते बोलने से भी बात समझ में नहीं आती है।

✻ थोवं...! Speak Slighr कम बोलना। Sweet n Smart भी Over हो जाती है। तब कोई भी व्यक्ति क्यों न हो वह उब जाता है। जो व्यक्ति कम बोलता है उसका मान-सम्मान बढ़ता है इतना ही नहीं वह व्यक्ति गोरवान्वित हो जाता है। उसकी बात सभी ध्यान से श्रवण करते है। वह व्यक्ति चाहे कम जानकारी रखता हो तो भी वह स्कालर लगता है और ज्यादा बोलनेवाला स्कालर भी क्यों न हो मूर्ख लगता है।

✻ वज्ञावडियं- Speak for Purpose जितनी काम की बात हो उतना ही बोलो। ज्यादा अनावश्यक बोलना अच्छी बात नहीं है।

✻ अगाव्वियं- Speak Ego Free कैसी भी अच्छी से अच्छी बात क्यों न हो यदि वह सच बात भी अहंकार के साथ

बोली जाएगी तो उस बात का कोई इम्पोर्टन्स नहीं रहेगा।

Ego आज भले ही उच्च होने की फिलिंग मानी जाती हो मगर इगो के कारण मानव हमेशा खराब लगता है। Ego वाले इन्सान को कोई भी पसन्द नहीं करता है। कितना भी महान इन्सान जब अपनी स्वयं की प्रशंसा करता है तब वह अपनी महानता खो बैठता है।

❋ अतुच्छं- तुच्छ शब्द कभी भी नहीं बोलने चाहिये। किसके गुप्त रहस्यों को भी प्रगट नहीं करने चाहिये। क्योंकि व्यक्ति की कमजोर बात कहने की नहीं पी जाने के लिये होती है। किसी व्यक्ति को हलका बताने की कौशिश स्वयं को हलका चितरने जैसा है।

❋ पुव्वं मइ संकलियं- Think Before you speak जो भी बोलना चाहते हो वह विचार कर बोले। जब हम सोच-विचार कर बोलते है तो वाणी के देवता होते है मगर बिना विचार बोलने के बाद हम वाणी के दास बन जाते है। समझदार वही कहलाता है जो हमेशा बोलने से पहले विचारता है। मूर्ख व्यक्ति बोलने के बाद विचार करता है कि मैं क्या बोला ? बिना विचारे बोलना वैसा ही है कि निशान लगाए बिना तीर चलना।

❋ हम्मसंजुत्तं- Speak Suitable to Religion- अपने धर्म को संस्कारों को परम्परा के शोभे ऐसे वचन बोलने चाहिये। क्रोध में, मान में माया में या लोभ में आकर न बोले न मजाक मस्ती में बोले। अपना धर्म लज्जीत हो ऐसा न बोले। समझदार ड्रायवर वही माना जाता है जो बांके-टेड़े-अंधे मोड़ वाले रास्तों पर हमेशा गाड़ी पर कन्ट्रोल बढ़ा देता हो। संयोग जब असामान्य हो तब वाणी पर संयम रखना ही समझदारी कहलाती है।

My Dear...!

कई व्यक्ति अपने संसार की कब्र अपनी स्वयं की जीभ से ही खोदती है।

पुराने समय में चूले जलाने के लिए एक भोगली रखते थे। हमारी निरंकुशवाणी भी उस भोगली जैसी है जो संपूर्ण घर और परिवार को जलाकर राख कर देती है।

टालस्टॉय ने अपनी डायरी के एक पृष्ठ पर लिखा था- एक भी दिन मेरी पत्नी ने मुझे मधुर स्वरों में बुलाया होता तो उसके मधुर स्मरण से मैं आनंदविभोर बन गया होता।

तेरे प्यारे-प्यारे डेडी !

(आगे और भी है...!)

पराक्रमी शाकाहारी राजवंश

❋ डॉ. दिलीप धींग, चैन्नई

दक्षिण भारत के मध्ययुगीन राजवंशी में गंग राजवंश (ईस्वी सन् की दूसरी से ग्यारहवीं शताब्दी) का महत्वपूर्ण स्थान है। इस राजवंश (ईस्वी सन् की दूसरी से ग्यारहवीं शताब्दी) का महत्वपूर्ण स्थान है। इस राजवंश के सभी राजा, रानी, राजकुमार, मंत्री, सेनापति आदि नियम पूर्वक शाकाहारी और सदाचारी थे। इसी राजवंश के इक्कीसवें राजा रायमल्ल सत्यवाक्य (द्वितीय) के शासनकाल में उनके महामात्य चामुण्डराय ने सन् 980 में श्रवणबेलगोला (कर्नाटक) में विन्ध्यगिरि पर भगवान बाहुबली की 56 फीट ऊँची मूर्ति का निर्माण करवाया। एक ही शिलाखण्ड से निर्मित बाहुबली की यह विशाल भव्यतम मूर्ति संसार का एक आश्चर्य मानी जाती है।

गंग राजवंश के संस्थापक दडिग और माधव थे। जैनाचार्य सिंहनन्दी उनके गुरु थे। गंग राजवंश की स्थापना करते समय आचार्य सिंहनंदि ने राजवंश के मूल पुरुष दडिग व माधव को पीढ़ी-दर-पीढ़ी सात नियमों के पालन की प्रतिज्ञा करवाई। सात नियम इस प्रकार है-

1- मद्य और मांस का सेवन नहीं करना।

2- पर-स्त्री को माँ-बहिन तुल्य मानना और सदाचार का पालन करना।

3- अभावग्रस्त लोगों की मदद करना।

4- दुष्ट लोगों से दूरी बनाए रखना।

5- समरांगण (सिद्ध-भूमि) से पलायन नहीं करना।

6- जैन धर्म की शिक्षाओं (अहिंसा, अनेकान्त, अपरिग्रह आदि) को अपने जीवन में ढालना।

7- ग्रहण की हुई प्रतिज्ञाओं का पालन करना।

गंगवंशीय राजाओं तथा उनके वंशजों ने इन सात शिक्षाओं को गुरुमंत्र मानकर अपने जीवन में उतारा। इन शिक्षाओं के अनुसार राजा और प्रजा ने राज्य में सुरक्षा और समृद्धि के साथ ही अहिंसा और नैतिकता को भी पूरा महत्व दिया। गंगवंश का शासनकाल इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित है।

❋ तू किसी भी व्यापार का करनेवाला हो, परन्तु आजीविका के लिये अन्याय सम्पन्न द्रव्य का उपार्जन न करना।

अध्यात्म का विज्ञान

अनंतकाल से आदमी अंधकार उलोच रहा है। अंधकार से प्रकाश की ओर चले जाने के लिए युगों से प्रार्थनारत है, पर अंधकार घनीभूत ही होता दिख रहा है। कलुष की परत-दर-परत काई जमती जा रही है। इस अभिव्यक्ति के सामने एक प्रश्न चिन्ह खड़ा होकर गंभीरता से विचार करने के लिए बाध्य करता है- अंधकार, काई और कलुष बाहर है या भीतर ? संत की वाणी तो स्पष्ट कह रही है-

बुरा जो देखन मैं गया बुरा न मिलया कोय।
जो दिल ढूंढा आपनो मुझसे बुरा न कोय ॥

विज्ञान एवं प्रत्यक्ष-ज्ञान तो यही है कि प्रकाश अंधकार को नहीं देखता है। शंका से परे यह सत्य, प्रश्न के आयाम को विस्तार देता है। तो क्या यह निष्कर्ष मान लें कि अंधकार है ही नहीं ? संत की वाणी में **'मुझ से बुरा न कोय'** द्रष्टव्य है। यहां तुलनात्मक ढंग से कहा गया कि बुरे तो दूसरे भी है, पर मेरे जैसे नहीं। विनम्र अंतःअभिव्यक्ति के कारण-**'बुरा न मिलया कोय'** प्रगट हुआ है। सवाल सुलझने के बदले थोड़ा अधिक उलझ जाता है। **'मुझ से बुरा न कोय'** संत की अभिव्यक्ति है। **'विद्या ददाति विनयम्'** को चरितार्थ करने वाली विनम्रता अपनी बुराई देखने का संस्कार निर्माण करती है। संत का बुरा नहीं देखने का सहज संस्कार से संतों के उपदेश, शिक्षण, निर्वचन का मेल नहीं खाता है। संतों ने बुराई देखी नहीं, या बुराई दिखती नहीं है तो दूसरों की बुराई से बचने की शिक्षा का प्रयोजन एवं उपयोग ही नहीं रह जाता है। गुरु, ग्रंथ, धर्म-प्रचार आदि महत्वहीन हो जाते हैं।

वास्तविकता यह है कि अंधकार और प्रकाश को देख पाना सामान्य दृष्टि से संभव नहीं है। प्रकाश अंधकारमुक्त नहीं है और अंधकार प्रकाशहीन नहीं है। दीपक के प्रकाश से बिजली की रोशनी अधिक साफ है और जब मार्तण्ड की जेष्ठ की किरण सिर पर आती है तो अंधकार को किसी कोने में भी जगह नहीं मिल पाती है। मानव चरित्र के गुण-दोष को संत तुलसीदास साफ कर रख देते हैं-

जड़ चेतन गुन दोषमय विश्व कीन्हा करतार।
संत हंस गुण गही पय परिहरि बारि बिकार॥

संत तुलसीदास के अनुसार इस गुण-दोषमय सृष्टि में गुण ग्राह्याता विवेक और विशालता के साथ-साथ विश्वास से सृजित होती है। एक व्यक्ति अपराधी हो गया। अपराधी पैदा नहीं हुआ था। कहीं फिसल गया-भौतिक लिप्सा के कारण, किसी उन्माद का शिकार होकर, किसी दबाव या प्रतिशोध भावना से अथवा अभाव के कारण स्वभाव बदला। संत अपराधी कहे जाने वाले से करुणा भावना से अधिक स्नेह से संबंध सबल बनाता है। वैद्य की तरह रोगी के रोग का निदान करता है। पर संत के लिये वैद्य की उपमा पूरी नहीं पड़ती है। रोगी और चिकित्सक का पिण्ड अलग-अलग है। संत और असंत के अलग पिण्ड होते हैं। संत पिण्ड की परिधि पार कर आत्मिक तादात्म्य स्थापित कर लेता है। यह संत की विशालता है।

यह विचार करना भी आवश्यक है कि जो बुराई दिख रही है उसमें कहीं हमारी भूल, पूर्वाग्रह या अपना पवित्रवाद तथा अहंकार तो नहीं है। कभी-कभी दवा भी रोगी को अच्छी नहीं लगती है, माता-पिता का प्यार-पूर्ण प्रबोधन संतान को बंधन लगने लगता है। इन कारणों से विवेक करना आवश्यक है कि दोष वास्तविक है अथवा भासित है। यह भी कहा गया-

भलेउ पोच सब बिधि उपजाए।
गणिगुण दोष वेद बिलगाए॥

प्रकृति ने तो सब को अच्छा ही बनाया। यह तो इस बुद्धि का कमाल है जिसने गुण और दोष का भेद पैदा किया। कालिख का उपयोग सियाही बनाकर सुन्दर विचार लिखने में है। काजल गाल पर पोतने से भद्दा दिखेगा और आंख में लगाने पर सौंदर्य के साथ-साथ आंख को स्वस्थ भी रखेगा। **'नाच न जाने अंगना टेढ़ा'** की कहावत चरितार्थ होती है। कीच से कमल का सतदल खुलकर मकरंद एवं पराग बिखेरता है। कीच कमल का आधार बनता है। विज्ञान तो मनुजता की पहचान है। व्यवहारिक विवेक के अभाव में यह गुण-दोष के द्वैध का शिकार हो जाता है। गुणग्राह्यता का अभाव उपलब्धियों के आनंद से वंचित कर देता है।

जो मंथन एवं मीमान्सा गुण-दोष के संबंध में की गयी है, वह भी नयी नहीं है। आज का आदमी ज्ञान+विज्ञान में ऊंचा उठा है। मानवता का आरोहण सृष्टिका सहज और शाश्वत

गुण है। वनमानुष से मनुष्य तक आने का विकासवाद आरोहण को रेखांकित करता है। ब्रह्मा की सृष्टि और ऋषि-संतान मानने वाली संस्कृति यदि इतिहास में गिरावट दर्ज करती है तो प्रकारान्तर से स्वीकार करती है कि कर्त्ता की कीर्ति गलत हो गयी। इस कारण कर्त्ता दोषी माने जायेंगे। सृष्टि चक्र मानने वाले उलट-फलट नहीं मानते है। उलट-फलट में नीचे-ऊपर होता है। चक्र में तो गति समान है। एक-एक बिन्दु की गति और मिती भी स्थिर है। अमृत, विष, चन्द्रमा और मुंडमाल-सबका समग्ररुप वृषभ देव का शिवरुप है तो क्या यह कथन गलत नहीं है कि अंधकार घनीभूत होता जा रहा है और परत-दर-परत काई जमती जा रही है। टाटा नगर जाता हूं- राख का पहाड़ दिखता है। राख का पहाड़ टाटा की पहचान नहीं है। टाटा की पहचान तो उसके संस्थापक 'जमशेद जी नसरबान जी टाटा' की पुरुषार्थ और विकास की रीढ़ मजबूत करने वाली, उनके कारखाने की उत्पादन क्षमता तथा हजारों को जीविका प्रदान करने की उसकी शक्ति है।

आज का कठोर सत्य गुण-दर्शन की इस विशालता को नकारेगा नहीं, तो आदर्शवादी अवश्य मानेगा। साधुत्व के प्रति आक्रोश भी संभव है, क्योंकि पीड़ा असह्य है। वर्तमान असुरक्षित और भविष्य भयानक है। चिता पर बैठकर परमात्मा का ध्यान देह-धर्म के लिये असंभव है। लेकिन यह भी सत्य है कि सारी दुनिया गेंद में सिमटकर पेरिस के विश्व-कप की प्रतियोगिता में खुशी के समुद्री तरंग से आनंद विभोर हो जाता है। ये आनन्द पाले वाले योगी नहीं है। सामान्य संसारी है। आनन्द को ढूंढने जाने की जरुरत नहीं, घर-घर में रंग-तरंग और सत-संग भी आज के जितना कभी सुलभ नहीं था। यह विसंगति क्यों ? सुख-दुःख की पराकाष्ठा साथ-साथ साकार है।

विज्ञान बढ़ा है इसमें कोई दो राय तो है ही नहीं, पर यह कहा जाए कि नैतिक मूल्य भी विकसित और परिमार्जित हुए है तो आसानी से गले उतरने वाला नहीं है। ऐसे कहने वाले को पागल भी मान सकते हैं, पर तथ्य को झुठलाया नहीं जा सकता। जितनी हिंसा बढ़ी है, उसकी तुलना में अहिंसा का मूल्य अधिक बढ़ा है। आज के मूल्य में सांप को भी मारना तथा वन्य प्राणियों का शिकार सर्वभावेन में वर्जित है। बलात्कार बढ़े है, पर कोई राजा सेना सजाकर दूसरे राजा की रुपवती राजकुमारी को उठा ले, इसकी समाज इजाजत नहीं देगा। इस प्रकार यह मानना होगा कि मानवीय मूल्यों में विकास हुए है पर व्यक्तिगत दोष भी बढ़े है। व्यक्तिगत या समूह के विछलन के लिए परिस्थितियां जिम्मेदार है। कारण स्पष्ट है। वैज्ञानिक विकास की तेज रफ्तार ने भौतिक भूख भी बेतहाशा बढ़ा दी। भौतिकता की रफ्तार नैतिकता के अंकुश से बेकाबू हो गयी। नैतिक मूल्यों के विकास एवं चरित्र की गिरावट के कारणों में जाना होगा। विज्ञान एवं आत्मज्ञान के अभ्यास के रास्ते एवं प्रक्रियाएं भिन्न-भिन्न है। दोनों तकनीक भिन्न है। भूल यह हुई कि आध्यात्मिक विकास के लिये भी विज्ञान की तकनीक को अपना लिया। एक जगह वैज्ञानिक प्रयोग हुआ। उसकी तकनीक ज्ञात हो गई तो जो भी चाहे मोबाइल फोन का लाभ ले सकता है, पर अध्यात्म के प्रसार एवं प्रयोग के रास्ते भिन्न है। मोबाईल फोन की तरह आदमी स्वस्फूर्त आतुरता से अपनाने के लिये आगे नहीं आते है। साबुन देखकर कपड़ा साफ नहीं होता है। कपड़ा धोने में साबुन सहायक होगा। साबुन को घीसना होगा। उदाहरण लिया पर यह सभी आध्यात्मिक आचरणों के लिये लागू होते हैं।

गांधीजी ने अपने जीवन में सत्य का प्रयोग किया। सत्य के प्रयोग के आधार पर अहिंसा के व्यापक प्रयोग की पात्रता पायी। समाज के मूल्य में अहिंसा को व्यापक स्थान मिला। यह सब होते हुए अहिंसा व्यक्तिगत चरित्र का अभ्यास नहीं हो सका। इसका प्रयोग स्पर्श तक सीमित रहा। यहां तक कि उनके बाद इसका ह्रास ही हुआ है। धार्मिक-प्रचार तथा आध्यात्मिक आचरण के प्रसार के लिये मिडिया का प्रयोग होने लगा। योग टीवी से सिखाया जाने लगा। इनके प्रभाव पानी पर चित्र गढ़ने जैसा ही सिद्ध हुआ है। गायत्री के कैसेट बन गए। अजान लाउड-स्पीकर से दिया जाने लगा और राम-सीता पर्दे पर दिखने लगे। सुबह भजन के रेकार्ड बजा देने पर वही असर नहीं होगा जो प्रातः स्नान आदि से निवृत्त होकर परिवार के प्रमुख व्यक्ति के हृदय से निकली हुई आवाज से होता है। छोटी-सी बात धार्मिक संस्थाओं के अखबार छपते हैं। डाक से प्राप्त होते हैं। इनके प्रेरक लेखों का लाभ नहीं मिलता है। प्रत्यक्ष आमने-सामने सुचिंतित सम्षाद नहीं हो पाता है। लेखक विशेष से परिचित है तो उनके आलेख का स्पर्श होगा। कम से कम इन पत्रिकाओं को यदि कार्यकर्ता एवं भक्ति-भाव से पहुंचाने वाले समर्पित सेवक हों तो प्रभावी हो सकेंगे। भूदान आन्दोलन के आरम्भ के दिनों में थैले में पत्रिका

लेकर पहुंचाने के क्रम में खरीदने वालों से सम्बद्ध होता था। चर्चा चलती थी। जिज्ञासा जगती थी। दूसरे साहित्य भी घर पहुंच जाते थे। 'बांटनहार को लगे ज्यों मेहंदी में रंग' चरितार्थ होता था। कार्यकर्ताओं की समझदारी बढ़ती थी। शिक्षण होता था। इस प्रक्रिया में कई नये लोग कार्यक्रम से जुड़े। सब दूर अब इस प्रकार के प्रयत्न समाप्त हो गये।

घर-घर जाकर मीरा और कबीर के भजनों को सुनाने से अनेक कबीर और मीरा हो गये। भाषा-भेद के होते हुए, व्यापक क्षेत्र के जन-जीवन के साथ जुड़ी इनकी शिक्षा आज भी अत्यन्त ताजी है। मीडिया के विज्ञान ने किसी को इतनी व्यापकता प्रदान नहीं की। निर्विवाद पहले का तरीका वैज्ञानिक था।

यांत्रिकता में परिवार टूटे, अर्थात् आचरण सीखने का आधार, जीवन की प्रथम पाठशाला ही अब उस रुप में रही नहीं। भौतिक आकांक्षा को विज्ञान का सहारा मिला है। उद्योग और व्यापार ही नहीं स्वार्थ एवं महत्वाकांक्षा ने सेवा को भी सत्ता से जोड़ दिया। फलस्वरुप मानवीय समाज टूटने लगा। हृदय में विष जाने लगे। हृदय में विष उड़ेले जाने लगे। चित्त पर खरौंच पैदा की जाने लगी। इन उद्भ्रांत प्रयत्नों के वातावरण में सद्-आचरण जितना भी बचा है, वह प्रमाणित करता है कि आचरण के मूल्यों के विकास हुए हैं। **''बिनु सत संग विवेक न होई''**, सत-संग के अभाव में भी विवेक शून्य होने से समाज का बचा रह जाना आध्यात्मिक आरोहरण का परिचायक है।

विज्ञान यदि ज्ञान का अनुचर होगा तो वैज्ञानिक प्रयत्न भी आध्यात्मक की परिस्थिति और वातावरण तैयार करने वाले होंगे। अबोध बच्चे के हाथ में चाकू दिया जाए तो हाथ काट लेगा। आध्यात्मिक बोध की शून्यता में विज्ञान का प्रयत्न दिशाहीन हो जाता है। आदमी की मूल आध्यात्मिकता का ही प्रभाव है कि प्रत्येक मारक हथियार बनाने वाले वैज्ञानिकों को पछताना पड़ा, विक्षिप्त और पागल बना क्योंकि उन्होंने अपनी आत्मा की हत्या पहले की।

भौतिक विज्ञान का शास्त्र तथा उसकी तकनीक आदमी को भी यंत्रवत बना देती है। अध्यात्म की साधना और आचरण से निमज्ञित शब्द मंत्र की शक्ति प्राप्त कर यंत्र को मानवीय विकास का साधन बना देता है। आध्यात्म प्रेरित विज्ञान से उपयोगी परिणाम मिलेंगे। उत्पादन के क्रम में कूड़ा-कचरा जमा नहीं होगा।

भौतिकता से केन्द्रीयकरण बढ़ता है। हृदयहीन निर्जीव पिण्ड तैयार होता है। आध्यात्मिक वृत्ति से अभ्यास बढ़ता है जिससे अणु से परमाणु की ओर जाकर विशालतय पिण्ड से भी अधिक महान, द्युतिमान एवं अनंत शक्ति प्राप्त होती है। यांत्रिकता से मानवता विवेकहीन विशाल पिण्ड और आत्म-ज्ञान शून्य संगठन के रुप में विकसित होगी। आदमीयत कुंद बन जाएगी। बड़ा काम नहीं, हम प्रेम के धागे को चटकार तोड़ें नहीं। संबंधों के इंदीवर की माला पिरोते रहेंगे तो मानवीय शक्ति साकार होगी। दिग्दिंगत में फैलती दानवीय शक्ति पर मानवीय शक्ति की विजय होगी। अपराध न होगा और दिखेगी शक्तिमान मानवता।

पूर्णत्व का सौन्दर्य

शुक्ल पक्ष की द्वितीया का क्षीणकाय-चन्द्र-निरभ्र गगन में अपनी मधुर आभा प्रस्फुटित कर रहा था। कला प्रेमी-अंतर्मन इस स्थिति से विचारमग्न हो-सोच रहा था-कि यही शशि, पूर्णत्व प्राप्त होने पर, राका रजनी में विश्व को उद्भासित कर अपने अनुपम सौन्दर्य से प्राणी मात्र को कितना मुग्ध कर देता है ? परन्तु कभी-कभी यही शशि मेघाच्छन्न हो-आभाहीन हो जाता है और कृष्ण पक्ष में अपनी क्रांति क्रमशः खो देता है । मन को सूत्र मिला-अनन्त ज्ञान एवं कलाओं से परिपूर्ण हमारे चैतन्य की क्या ऐसी ही स्थिति नहीं होती है ? क्या शाश्वत ज्ञान प्रकाश से उद्भासित हमारा आत्मदेव कर्मावरणों से आच्छादित नहीं होता ? क्या उसे अनावृत्त होने के लिये संघर्ष नहीं करना पड़ता है ? महत्त प्रयत्नों के परिणामस्वरुप ही-मेघाच्छन्न आकाश में भी शशि का वर्तुल अपना अस्तित्व बताता रहता है, परन्तु पूर्णत्व का प्रेमी संसार-अनन्त ज्ञानयुक्त आत्मदेव के यत्किंचित प्रकाश से संतुष्ट नहीं होता है । उसे चाहिये पूर्णत्व । आज आवश्यकता यह है कि-आवृत ज्ञानप्रकाश को अनावृत्त करें। एक योगीराजजी ने कहा है-''परमातम पूरण कला, पूरण गुण हो, पूरण जन आश ।''

परम आत्मा सदा पूर्ण कलाओं से युक्त होता है-वह अनन्त ज्ञान का पुंज है-अनन्त गुण रत्नों की खान है-अनन्त शक्ति एवं सामर्थ्य का धारक है। प्रभु का पावन दर्शन ही तो-अपूर्णता से पूर्णत्व की ओर ले जाने का साधन है, तभी तो अजर-अमर चैतन्य पूर्ण कलाओं से युक्त हो सकेगा।

मेरे मालिक **मालव भूषण पूज्यपाद आचार्यदेव श्री नवरत्नसागर सूरीश्वरजी महाराज**

प्रेम से भरी हुई 'आँखे' देना। श्रद्धा से झुका हुआ 'सिर' देना, सहयोग करते हुए 'हाथ' देना। सद्पथ पर चलते हुए 'पांव' देना और स्मरण करता हुआ 'मन' देना।

वस्तुपाल तेजपाल दोनों भाईयों ने....

✱ 1300 शिखारबंध जिनालय बनाए।

✱ 3 लाख द्रव्य खर्च करके शत्रुंजय पर तोरण बांधा।

✱ 3202 जिनमंदिर के जीर्णोद्धार करवाए।

✱ वर्ष में तीन बार संघ पूजा तथा साधर्मिक वात्सल्य करते थे।

✱ 105000 जिन प्रतिमा भरवाई।

✱ 984 पौशाधशालाएं बनवाई।

✱ 1000 सिंहासन महात्माओं के लिए करवाए।

✱ 702 धर्मशालाएं बनवाई।

✱ 1000 दानशालाएं बनवाई।

✱ 35 लाख द्रव्य खर्च करके खंभात में ज्ञान भंडार बनवाए।

✱ 400 पानी की परब बनवाई।

✱ 500 सिंहासन हाथी दांत के बनवाए।

✱ 700 पाठशालाएं पढ़ने के लिये बनवाई।

✱ 12 बार शत्रुंजय पर संघ ले गए।

सच्ची तपस्या

छह वर्ष की कठोर तपस्या के बाद एक साधु को लगा कि मैं कृतकृत्य हो गया हूं।

गुरुदेव को जब शिष्य की मनोवृत्ति का पता चला, तब अपने पास बुलाकर उन्होंने उससे कहा- अमुक शहर में एक भिखारी रहता है। तुम जाकर उसके दर्शन करो। वह तुमसे काफी महान है।

सुनकर शिष्य को बड़ा आश्चर्य हुआ। गुरुदेव के बताये हुए रास्ते पर चलकर वह उसी शहर में आया। तलाश करने पर उसे भिखारी के दर्शन भी हुए। शास्त्रों की जानकारी के नाम पर भिखारी को कुछ नहीं आता था, इसलिए साधु ने सोचा कि यह जड़बुद्धि भिखारी मुझसे श्रेष्ठ कैसे हो सकता है ?

साधु ने भिखारी से पूछा- भाई ! तुम भिखारी कैसे बन गये ? राजा ने तुम्हारी दौलत छीन ली या चोरों ने लूट ली ?

भिखारी ने कहा- नहीं महाराज ! इनमें से एक भी कारण नहीं बना, अर्थात् न तो मुझे राजा ने सताया और न चोरों ने। फिर भी यह सत्य है कि मैं एक दिन काफी धनाढ्य था। एक बार मैंने देखा कि एक स्त्री के पति को और बच्चों को (कर्ज न चुका सकने के कारण) किसी ने गुलाम बना लिया था। महिला निराधार हो गई थी। संपत्ति तो उसके पास बिलकुल थी ही नहीं और पति-पुत्रों से भी वियोग हो गया था, इसलिए उस अकेली अनाथ महिला के पीछे बुरी नीयत से कुछ गुण्डे लग गये। मुझसे यह दुष्कृत्य देखा न गया, इसलिए मैंने उन गुण्डों के पंजे से उस महिला को छुड़ा लिया। इतना ही नहीं, किन्तु कर्ज चुका करके उसके पति-पुत्रों को भी गुलामी से छुड़ा लिया। इतना होने पर भी वे सुखी न थे। खाने को पेट तो प्रतिदिन मांगना ही है न ? मैंने अपनी सारी संपत्ति बेचकर उस कुटुम्ब का भरण-पोषण किया परन्तु मैंने इसमें कोई खास बात नहीं की। प्रत्येक मनुष्य ऐसा ही करता है।

यह सुनते ही साधु की आँखों से आँसू बरसने लगे। उसने प्रणाम करते हुए मन-ही-मन कहा- सचमुच यह भिखारी मुझसे अच्छा उदार है। उदार होते हुए भी अभिमानी नहीं।

उत्कृष्ट विचारों का सतत सान्निध्य

सद्विचारों की महिमा का अनुभव तो हम करते हैं, पर उनकी दृढ़ता नहीं रह पाती। जब कोई अच्छी पुस्तक पढ़ते या सत्संग-प्रवचन सुनते हैं, तो इच्छा होती है कि इसी अच्छे मार्ग पर चलें, पर जैसे ही वह प्रसंग पलटा कि दूसरे प्रकार के पूर्व अभ्यास से बने विचार पुनः मस्तिष्क पर अधिकार जमा लेते हैं और वही पुराना घिसा-पीटा कार्यक्रम पुनः चलने लगता है। इस प्रकार उत्कृष्ट जीवन बिताने की आकांक्षा एक कल्पना मात्र बनी रहती है। उसके चरितार्थ होने का अवसर प्रायः आने ही नहीं पाता।

कारण यह है कि अभ्यस्त विचार बहुत समय से मस्तिष्क में अपनी जड़ जमाए हुए हैं, मन उनका अभ्यस्त भी बना हुआ है। शरीर ने एक स्वभाव एवं ढर्रे के रुप में उन्हें अपनाया हुआ है। इस प्रकार उन पुराने विचारों का पूरा आधिपत्य अपने मन और शरीर पर जमा हुआ है। यह आधिपत्य हटे और नए उत्कृष्ट विचार वह स्थान ग्रहण करें, तो ही यह संभव है कि मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार अर्थात् अंतःकरण चतुष्टय बदले। जब अंतःभूमिका बदलेगी, तब उसका प्रकाश बाह्य कार्यक्रमों में दृष्टिगोचर होगा। परिवर्तन का यही तरीका है।

उच्च विचारों को बहुत थोड़ी देर हमारी मनोभूमि में स्थान मिलता है। जितनी देर सत्संग, स्वाध्याय का अवसर मिलता है, उतने थोड़ेसमय ही तो अच्छे विचार मस्तिष्क में ठहर पाते हैं। इसके बाद वहीं पुराने कुविचार आँधी-तूफान की तरह आकर उन श्रेष्ठ विचारों की छोटी-सी बदली को उड़ाकर एक ओर भगा देते हैं। निकृष्टविचारों में तत्कालिक लाभ और आकर्षण स्वभावतः अधिक होता है, चिरकाल से अभ्यास में आते रहने के कारण उनकी जड़ेंभी गहरी हो जाती है। इन्हें उखाड़कर नए श्रेष्ठ विचारों की स्थापना करना सचमुच बड़े अध्यवसाय का काम है।

किसी घने जंगल में कँटीली झाड़ियाँ सारी भूमि को घेरे रहती है, गहराई तक अपनी जड़ें जमाए रहती हैं। यदि उस जंगल को कृषि योग्य बनाना हो, तो वह झाड़-झंखाड़ काटने की व्यवस्था करनी पड़ती है। फिर भूमि खोदकर जड़ेंउखाड़नी पड़ती हैं। जोत कर खेत को एक समान करना पड़ता है। खाद और पानी की व्यवस्था जुटानी पड़ती है। इतना प्रबंध करने पर ही वह घने जंगल की ऊबड़-खाबड़ भूमि परिपूर्ण अन्न उपजाने वाली कृषि योग्य भूमि बन पाती है। मनोभूमियों को सत्कर्मों की, सद्भावनाओं की हरी-भरी फसल उगने योग्य बनाने के लिये ऐसा ही पुरुषार्थ किया जाना आवश्यक होता है।

दस-पांच मिनट कुछ पढ़ने-सुनने या सोचने-चाहने से ही परिष्कृत मनोभूमि का बन जाना और उसके द्वारा सत्कर्मों का प्रवाह बहने लगना कठिन है। इसलिये क्रमबद्ध, योजनाबद्ध, दीर्घकालीन और सुस्थिर प्रयत्न करना होता है। फैलाया हुआ पानी नीचे की ओर आसानी से बिना प्रयास के बहने लगता है, पर यदि उसे ऊपर पहुंचाना हो, तो इसके लिये कई उपकरण जुटाने की व्यवस्था की जाती है। बिना विशेष प्रयत्नों के पानी ऊपर नहीं चढ़सकता है। इसी प्रकार स्वल्प प्रयत्नों से मनोभूमि का परिवर्तन भी संभव नहीं और बिना आंतरिक परिवर्तन के बाह्य जीवन में श्रेष्ठता की स्थापना हो ही कैसे सकती है ? जैसे विचारों को जितनी तीव्रता और निष्ठा के साथ जितनी अधिक देर मस्तिष्क में निवास करने का अवसर मिलता है, वैसे ही प्रभाव की मनोभूमि में प्रबलता होती चलती है। देर तक स्वार्थपूर्ण विचार मन में रहें और थोड़ी देर सद्विचारों के लिए अवसर मिले, तो वह अधिक देर रहने वाला प्रभाव कम समय वाले प्रभाव को परास्त कर देगा। इसलिये उत्कृष्ट जीवन की वास्तविक आकांक्षा करने वाले के लिए एक ही मार्ग रह जाता है कि मन में अधिक समय तक, अधिक प्रौढ़, अधिक प्रेरणाप्रद, उत्कृष्टकोटि के विचारों को स्थान मिले।जिसका बहुमत होता है, उसकी जीत होती है। बहती गंगा में यदि थोड़ा मैला पानी पड़जाए, तो उसकी गंदगी प्रभावशाली न होगी पर यदि गंदे नाले में थोड़ा गंगाजल डाला जाए, तो उसे पवित्र न बनाया जा सकेगा। इसी प्रकार यदि मन में अधिक समय तक बुरे विचार भरे रहेंगे, तो थोड़ी देर, थोड़े से अच्छे विचारों को स्थान देने से भी कितना काम चलेगा ? उचित यहीं है कि हमारा अधिकांश समय इस प्रकार बीते, जिससे उच्च भावनाएं ही मनोभूमि में विचरण करती रहें। संसार में बुराई इसलिए फैली है कि लोगों के मन में बुरे

विचारों का बाहुल्य रहता है । चोर, डाकू, जुआरी, व्यभिचारी, व्यसनी अपने विचारों के पक्के होते हैं। जो उन्हें ठीक जंच गया है, उसी इच्छा की पूर्ति के लिए निरंतर प्रयत्न करते हैं । निष्ठा के अनुरुप काम करने से भावनाओं में परिपक्वता आती है और उस परिपक्वता में दूसरों को प्रभावित करने की क्षमता भरी रहती है शराबी अपने विचारों का पक्का होता है। बदनामी, धनहानि और स्वास्थ्य-नाश की परवाह न करके भी वह शराब पीता है। मन और कर्म की इस एकता से जो दृढ़ता उसमें रहती है, उसके फलस्वरुप कई अन्य कमजोर प्रकृति के मनुष्य भी उसके प्रभाव में आकर शराब पीना सीख जाते हैं। चरित्र शिक्षण की यही पद्धति सफल होती है। बुरे स्तर के व्यक्तिअपनी बुराईयों में तन्मय रहकर दूसरे अनेकों को अपना साथी बनाते और बुराई सिखाते हैं।

बुराई की ही भांति अच्छाई में भी अपनी शक्ति एवं विशेषता होती है, पर प्रभावशाली तभी बनती है, जब मन, वचन और कर्म में एकता हो। यदि प्रौढ़और परिपक्व आचरण के श्रेष्ठव्यक्ति कभी प्रकाश में आते हैं, तो उनसे भी अगणित लोग प्रेरणा प्राप्त करते हैं। गांधीजी का प्रभाव सभी लोगों ने आंखों से देखा है। उनकी प्रेरणा से अगणित व्यक्तियों की भावनाएं बदली और लाखों व्यक्तियों ने हंसते-हंसते बड़े बलिदानों की जोखिम उठाई। अच्छाई इसलिये पनप नहीं पाती कि उसका शिक्षण करने वाले ऐसे लोग नहीं निकल पाते, जो अपनी एकनिष्ठा के द्वारा दूसरों की अंतरात्मा पर अपनी छाप छोड़ सकें। अपने अवगुणों को छिपाने के लिये या सस्ती प्रशंसा प्राप्त करने के लिये धर्म का आडंबर मात्र ओढ़ लेते हैं।।'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' बहुत हैं, पर जो आदर्शो को दैनिक जीवन में कार्यान्वित करें, ऐसे लोग कम हैं। यहीं कारण है कि अच्छाई बढ़ नहीं पाती, फैल नहीं पाती। यदि सज्जनतापूर्ण सच्चे व्यक्तित्व प्रकाश में आने लगें, तो उनके प्रभाव से अच्छाईयाँ भी तेजी से फैलें। बुराई का स्थान अच्छाई को मिल जाए, तो युग परिवर्तन की बात कुछ कठिन दिखाई न दें । उत्कृष्ट एवं प्रौढ़ विचारों को अधिकाधिक समय तक हमारे मस्तिष्क में स्थान मिलता रहे, ऐसा प्रबंध यदि कर लिया जाए, तो कुछ ही दिनों में अपनी इच्छा, अभिलाषा और प्रवृत्ति उसी दशा में ढल जाएगी और ब्राह्य जीवन में वह सात्विक परिवर्तन स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगेगा। विचारों की शक्ति महान है, उससे हमारा जीवन तो बदलता ही है, संसार का नक्शा भी बदल सकता है। कैसा अच्छा होता कि प्राचीनकाल की तरह जीवन के प्रत्येक पहलू पर उत्कृष्ट समाधान प्रस्तुत करनेवाले साधु, ब्राह्मण आज भी हमें उपलब्ध रहे होते। वे अपने उज्जवल चरित्र, सुलझे हुए मस्तिष्क और परिपक्व ज्ञान द्वारा सच्चा मार्गदर्शन करा सकते, तो कुमार्ग पर ले जाने वाली सभी दुष्प्रवृत्तियाँ शमन होती, पर आज उनके दर्शन दुर्लभ हैं। जो देश, काल, पात्र की स्थिति का ध्यान रखते हुए आज के बुद्धिवादी एवं संघर्षमय युग के अनुरुप समाधान प्रस्तुत करके जीवन को ऊंचा उठाने वाले व्यावहारिक सुझाव दे सकें, आज ऐसे मनीषी कहां है ? उनका अभाव इतना अखरता है कि चारों ओर शून्य दिखता है । ऋषियों की यह भूमि ऋषि तत्व से रहित हो गई जैसी लगती है।

दुर्भाग्य एक और भी है कि स्वाध्याय के उपयुक्त साहित्य भी कहीं-कहीं ही दृष्टिगोचर होता है। पुस्तक विक्रेताओं की दुकानें खोज मारने पर भी मुश्किल से ही कुछ पुस्तकें ऐसी मिलेंगी, जो जीवन निर्माण के लिए आज की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए व्यावहारिक सुझाव प्रस्तुत करती हों। प्रेसों में ऐसा कूड़ा-कचरा दिन-रात छपता है, जिसे पढ़कर लोगों के दिमाग और भी अधिक खराब हों।

आज की परिस्थितियों में जो भी संभव हो, हमें ऐसा साहित्य तलाश करना चाहिये, जो प्रकाश एवं प्रेरणा प्रदान करने की क्षमता से सम्पन्न हो । उसे पढ़ने के लिये कम से कम एक घंटा निश्चित रुप से नियत करना चाहिये। धीरे-धीरे समय निकालकर विचारपूर्वक उसे पढ़ना चाहिये। पढ़ने के बाद उन विचारों पर बराबर मनन करना चाहिये। जब भी मस्तिष्क खाली रहें, यह सोचना चाहिये कि आज के स्वाध्याय में जो पढ़ा गया था, उस आदर्श तक पहुंचने के लिये हम प्रयत्न करें, जो कुछ सुधार संभव है, उसे किसी न किसी रुप में जल्दी ही आरंभ करें। श्रेष्ठ लोगों के चरित्रों को पढ़ना और वैसा ही गौरव स्वयं भी प्राप्त करने की बात सोचते रहना मनन और चिंतन की दृष्टि से आवश्यक है। जितनी अधिक देर तक मन में उच्च भावनाओं का प्रवाह बहता रहे, उतना ही अच्छा है। ऐसा साहित्य हमारे लिये संजीवनी बूटी का काम करेगा। उसे पढ़ना अपने अत्यंत प्राणप्रिय कामों में से एक बना लेना चाहिये। सुलझे हुए विचारों के सच्चे मार्गदर्शक न मिलने के अभाव की पूर्ति श्रेष्ठसाहित्य से ही संभव है। उत्तम पुस्तकें,

आदर्श ग्रंथ वस्तुतः जीवन की बहुत बड़ी संपत्ति हैं। अपनी संतति के लिये उत्तराधिकार में छोड़ने के लिये पुस्तकें सर्वोपरि मूल्यवान वस्तु हैं संसार में, क्योंकि उत्तम ग्रंथों का अध्ययन करके मनुष्य ऋषि, देवता, महात्मा, महापुरुष बन सकता है। जिन परिवारों में ज्ञानार्जन का क्रम पीढ़ियों से चलता रहता है, उनमें से पंडित, ज्ञानी, विद्वान अवश्य निकलकर आते हैं। जहां पुस्तकें होती है, वहां मानो देवता निवास करते हैं। वह स्थान मंदिर है, जहां पुस्तकों के रुप में मूक किंतु ज्ञान के चेतनायुक्त देवता निवास करते हैं। वे माता-पिता धन्य है, जो अपनी संतान के लिये उत्तम पुस्तकों का एक संग्रह छोड़ जाते है, क्योंकि धन, संपत्ति, साधन सामग्री तो एक दिन नष्ट होकर मनुष्य को अपने भार से डुबो भी सकती है, किंतु उत्तम पुस्तकों के सहारे मनुष्य भवसागर की भयंकर लहरों में भी सरलता से तैरकर उसे पार कर सकता है। जीवन में अन्य सामग्री की तरह हमें उत्तम पुस्तकों का संग्रह करना चाहिये। जीवन के विभिन्न अंगों पर प्रकाश डालने वाले, विविध विषयों के उत्तम ग्रंथ खरीदने के लिये खर्च के बजट में सुविधानुसार आवश्यक राशि रखनी चाहिये। कपड़े, भोजन, मकान की तरह ही हमें पुस्तकों के लिए भी आवश्यक खर्चे की भांति ध्यान रखना चाहिये। स्मरण रखिए, उत्तम पुस्तकों के लिए खर्च किया जाने वाला पैसा उसी प्रकार व्यर्थ नहीं किया जाता, जिस तरह अंधेरे बियावान जंगल में प्रकाश के लिए खर्च किए जाने वाला धन। एक बात और ध्यान में रखनी चाहिये, वह यह कि पुस्तकें कमरे को सजाने के लिये अथवा प्रदर्शनियां लगाने के लिये न खरीदी जाएं वरन् उनका नियमित अध्ययन जीवन के अन्य कार्यक्रमों की तरह ही आवश्यक अंग बना लेना चाहिये। उनसे अधिकाधिक लोगों को ज्ञान मिलें, इसके लिए अध्ययन की प्रेरणा-सुविधा जुटाते रहना चाहिये। पुस्तकों की उपयोगिता अध्ययन से ही है अन्यथा वे कीड़ों का भोजन बनने के सिवा कुछ नहीं रहती। नई पुस्तकें खरीदना, उनका अध्ययन करना, उनको अधिकाधिक उपयोग में लाना ही पुस्तकों की सच्ची कद्र करना है। स्मरण रखा जाना चाहिये कि पुस्तकें जाग्रत देवता है। उनके अध्ययन, चिंतन, मनन के द्वारा पूजा करने पर तत्काल ही वरदान पाया जा सकता है। हमें नियमित रुप से सद्ग्रंथों का स्वाध्याय करना अपने जीवन का आवश्यक कर्त्तव्य बना लेना चाहिये।

✻ सीलोन में एक जड़ी-बूटी बेचकर गुजारा करने वाला व्यक्ति रहता था। नाम था उसका महता शैसा। उसके घर की आर्थिक स्थिति बहुत ही खराब थी, कई-कई दिन भूखा रहना पड़ता। उसकी माता चक्की पीसने की मजदूरी करती, बहन फूल बेचती तब कहीं गुजारा हो पाता। ऐसी गरीबी में भी उसकी नीयत सावधान थी।

महता एक दिन एक बगीचे में जड़ी-बूटी खोद रहा था कि उसे कई घड़े भरी हुई अशर्फियां गढ़ी हुई दिखाई दी। उसके मन में दूसरे की चीज पर जरा भी लालच न आया और मिट्टी से ज्यों-का-त्यों ढंककर बगीचे के मालिक के पास पहुंचा और उसे अशर्फियां गढ़े होने की सूचना दी।

बगीचे के मालिक लरोटा की आर्थिक स्थिति भी बहुत खराब हो चली थी। कर्जदार उसे तंग किया करते थे। इतना धन पाकर उसकी खुशी का ठिकाना न रहा। सूचना देनेवाले शैसा को उसने चार सौ अशर्फियाँ पुरस्कार में देनी चाही, पर उसने उन्हें लेने से इन्कार कर दिया और कहा-इसमें पुरस्कार लेने जैसी कोई बात नहीं, मैंने तो अपना कर्त्तव्य मात्र पूरा किया है।

बहुत दिन बाद लरोटा ने अपनी बहन की शादी शैसा से कर दी और दहेज में कुछ धन देना चाहा। शैसा ने वह भी न लिया और अपनी हाथ-पैरों से मजदूरी करके दिन गुजारे।

पूज्यपाद गुरुदेवश्री

आपने जो सिखाया
आपने जो समझाया
आपने जो दिखाया
जो बताया
जो दिया, जो किया
उन सब में आती है....
महक आपके अंश की
जो कम कर देती है
ताकत आपके विरह दंश की।

आत्मबल ही सर्वोपरि

सृष्टि में प्रकृति की अनेकानेक शक्तियां अपने-अपने ढंग से कार्यरत हैं। मनुष्य अपनी क्षमता के अनुसार उनसे लाभ भी उठाता रहता है। उनके पास भी आत्मा की अकूत शक्ति है, पर विरले ही उसे वैभव का सुनियोजित लाभ ले पाते हैं । प्रायः व्यक्ति शरीर-बल, बुद्धि-बल, संघ-बल और धन-बल के सीमित दायरे में सिकुड़ा सिमटा रहता है और उसी को सब कुछ मानकर तद्नुरुप तानाबाना बुनता रहता है। वह यह भूल जाता है कि उसके अन्तराल में भी एक अद्वितीय शक्ति स्रोत विद्यमान है जो उक्त सभी बलों का शक्तियों का प्राण है। जब तक यह सामर्थ्य हमारे पास नहीं होती, तब तक धन, बुद्धि, स्वास्थ्य, संघ आदि की सामर्थ्यों को भी क्रमबद्ध जीवन-विकास कर सकने और जो उपलब्ध है, उसका समुचित लाभ एवं आनन्द उठा सकने से वंचित रह जाना पड़ता है। इस सर्वोपरि बल-सामर्थ्य का नाम है- आत्मबल। आत्मबल के अभाव में सारी भौतिक सामर्थ्य तथा उपलब्धियाँ केवल भार बन कर रह जाती हैं। केवल बलवान होना ही काफी नहीं है। बल का, शक्ति का सही दिशा में सदुपयोग होना ही कौशल है, जिसके आधार पर समर्थता का लाभ उठाया जा सकता है।

आत्मबल के अभाव में वह विवेक-बुद्धि जाग्रत नहीं होती, जो वासनात्मक इन्द्रिय असंयम पर, तृष्णात्मक अनियंत्रित महत्वाकांक्षाओं एवं आलस्य, प्रमादात्मक, मानसिक असंयम पर नियंत्रण कर सके। अन्तःकरण में विद्यमान् दैवी और आसुरी शक्तियों में से आसुरी शक्तियों का उभार तीव्र होता है, वे निकृष्ट स्वार्थों की पूर्ति के लिये दुष्प्रवृत्तियाँ अपनाने के लिये प्रेरणा देती रहती है,उनके ऊपर नियंत्रण करना भी बिना आत्मबल के संभव नहीं । इन्द्रियाँ, मन और अन्तःकरण में विद्यमान् आसुरी सत्ता दुर्बुद्धि का रुप धारण कर हमारे कठोर परिश्रम द्वारा उपार्जित सामर्थ्यों को अपव्यय एवं दुर्व्यय की ओर धकेल देती है। जब दिशा सही नहीं तो सुख-शांति एवं प्रगति का लक्ष्य कैसे मिले ? यही वह विडम्बना है, जो हमारे प्रयास और परिश्रम को निष्फल बना देती है। प्रगति की प्रबल आकांक्षा को पूरा करने के लिये हम अपनी समझ के अनुसार निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं, फिर भी दुर्भाग्यवश खाली हाथ ही रहना पड़ता है।

हमें जानना चाहिये कि मनुष्य केवल शरीर मात्र ही नहीं है। उनमें एक परम तेजस्वी आत्मा भी विद्यमान है। हमें जानना चाहिये कि मनुष्य केवल धन, बुद्धि और स्वास्थ्य के भौतिक बलों से ही सांसारिक सुख, सम्पदा, समृद्धि एवं प्रगति प्राप्त नहीं कर सकता, उसे आत्म-बल की आवश्यकता है। आत्मा के अभाव में शरीर की कीमत दो कौड़ी भी नहीं रहती। इसी प्रकार आत्म-बल के अभाव में उपर्युक्त तीनों शरीर-बल मात्र खिलवाड़ बनकर रह जाते हैं।

आत्म-चेतना की विस्मृति मानव-जीवन की एक भयावह भूल हैं। यों कहने-सुनने को हम आत्मा-आत्मा शब्द बार-बार पढ़ते, सुनते हैं। उसके संबंध में कोतूहल भरी विवेचनाएं भी बार-बार सामने आती-जाती हैं, पर वस्तुतः यह अनुभव होता कभी भी नहीं है कि हम आत्मा है। अभ्यास और विश्वास यही है कि हम शरीर के रुप में जो कुछ जाने-माने जाते हैं, वहीं है- उतने ही हैं। शरीर भावना इतनी प्रबल परिपक्व हो गई है कि यह अनुभव करना अति कठिन है कि हम शरीर से भिन्न एक परम पवित्र एवं परम समर्थ चेतना केन्द्र हैं। यदि ऐसा अनुभव होने लगे तो सोचने का सारा आधार ही बदल जाय।

मैं आत्मा हूं, शरीर मेरा उपकरण है। मेरा स्वार्थ, आत्मिक स्वार्थ परमार्थ है। उसे शरीर स्वार्थों की वेदी पर बलिदान न करुंगा। आत्मसत्ता के प्रति यह विद्रोह जब सजग विवेक द्वारा आरंभ होता है तो अन्तरंग में एक भावनात्मक महाक्रांति उठ खड़ी होती है और सोचने तथा करने की पद्धति में महत्वपूर्ण परिवर्तन करने के लिये विवश होना पड़ता है। यही वह मर्मस्थल है, जहां आत्म-जागरण, आत्म-निर्माण, आत्म-विकास की संभावनाएं मूर्तिमान होती हैं। यही वह प्रवेश द्वार है, जहां से ऋद्धि-सिद्धियों, महान विभूतियों का रत्नभंडार जगमगाता हुआ दिखता है। जो किसी भी व्यक्ति को सफलता के द्वार पर पहुंचा सकता है। आत्म-ज्ञान के साथ यह मान्यता जगती है कि हमारा स्वरुप और लक्ष्य क्या है ? हमें क्या सोचना और करना चाहिये। इन प्रश्नों के उत्तर अन्तःकरण में से अनायास ही, स्वयेव ही उठते हैं। जीवन की खोई हुई पवित्रता प्राप्त करने के लिये, विचारणा को परिष्कृत करने के लिये, गतिविधियों को व्यवस्थित करने के लिये एक प्रचण्ड साहस, उत्साह एवं उल्लास यदि अन्तरंग में से फूट पड़े तो समझना चाहिये कि आत्म-जागरण एवं आत्म-साक्षात्कार का एक

सौभाग्यशाली शुभ मुहूर्त आ गया। इस विवेक बिन्दु पर खड़ा हुआ व्यक्ति बड़े महत्वपूर्ण आश्चर्यचकित करने वाले एवं दुस्साहसपूर्ण निर्णय करता है। आत्म-बल का प्रधान लाभ जीवन को सर्वोत्तम सदुपयोग के लिये प्रस्तुत करना है। अपने आपकी समीक्षा कर सकना, अपनी गतिविधियों को निकृष्टता की कीचड़में से निकाल कर उत्कृष्टता के सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर सकना मानव-जीवन का सबसे बड़ा पुरुषार्थ और मानवी चेतना की सबसे बड़ी सफल साधना है। जीवन-क्रम देखने में सामान्य भले ही रहे, पर अन्तरंग की उत्कृष्टता को जो समुन्नत कर सके वस्तुतः वही महापुरुष है। पुरुष का महापुरुष के रुप में, नर का नारायण के रुप में, क्षुद्र का महान् के रुप में परिणित हो जाना यही जीवन के चरम लक्ष्य की प्राप्ति है।

यहां मनोबल और आत्मबल का अन्तर हमें समझ लेना चाहिये। मनोबल, इच्छा-शक्ति, दृढ़ता, साहस और धैर्य का नाम है। इन गुणों का अपना महत्व है। सांसारिक सफलताएं इन्हीं गुणों के आधार पर मिलती है। मनस्वी लोग कठिनाईयों से डरते नहीं वरन् दूने उत्साह से कष्ट सहते हुए संघर्ष करते हुए आगे बढ्ते है। जबकि दूसरे लोग पग-पग पर निराशा आशा के हर्ष-शोक के झूले में झूलते रहते हैं, तब मनोबल सम्पन्न व्यक्ति अविचल भाव से निर्धारित दिशा में तत्परतपूर्वक गतिशील रहते हैं। साहस के आधार पर बड़े-बड़े कठिन कार्य पूरे होते हैं।परिश्रमों, उद्योगी पुरुषार्थी लगने वाली सफलताएं प्राप्त कर लेते हैं। उत्साह और स्फूर्ति का चुम्बकीय आकर्षण अनेक दिशाओं से सुविधा साधन तथा सहयोग खींचकर सामने खड़े कर देते हैं। संसार में छोटे-छोटे मनुष्यों ने अभावों और असुविधाओं को चीरते हुए प्रगति की है, उसमें उनके साहस, श्रम, धैर्य और मनोबल का ही श्रेय है। भौतिक प्रगतियों की कुंजी मनोबल ही तो है।

मनोबल का अपना महत्व है, पर है इसी सीमा तक कि किन्हीं कार्यों को सिद्ध करने में प्रयुक्त हो सके। आत्म-बल इससे ऊँची शक्ति है, उसमें साहस और बल तो होता है पर ऊँचे स्तर का। आदर्शों और सिद्धांतों पर अड़े रहने, किसी भी प्रलोभन और कष्ट के दबाव में कुमार्ग पर पग न बढ़ाने, अपने आत्म गौरव के अनुरुप सोचने और करने, दूरवर्ती भविष्य के निर्माण के लिये आज की असुविधाओं को धैर्य और प्रसन्नचित से सह सकने की दृढ़ता का नाम आत्म-बल है। जो वासना और तृष्णा को-स्वार्थ और सुविधा को ठोकर मारकर अपने लिये नहीं, लोक मंगल के लिये सदाचार से भरा, प्रेम और आत्मीयता से भरा जीवन जी सकता है, उस महामानव को ही आत्म-बल सम्पन्न कहा जायेगा। आत्म-बल आत्मा की उच्च स्थिति का प्रकाश है। उसके आधार पर किसी की आन्तरिक महानता नापी जा सकती है। जो आत्मिक दृष्टि से जितना महान है, उसे इस संसार का उतना ही बड़ा सम्पन्न और विभूतिवान मानना चाहिये। ऋषि और मनीषियों के पास यही संपदा होती है और वे इसी विभूति के बल पर आत्म-कल्याण का लक्ष्य प्राप्त करते हुए चन्दन वृक्ष की तरह अपने समीपवर्ती लोगों को सुरभित लाभांवित करते रहते हैं।

मनुष्य शरीर में ईश्वर का अंश उसके आत्मबल के आधार पर आंका और नापा जा सकता है जिसमें जितना आत्म-बल हो, समझना चाहिये कि उसके व्यक्तित्व में उतनी ही मात्रा में ईश्वर का निवास है। जहां ईश्वर है, वहां ऐश्वर्य की क्या कमी। दूसरे उसे गरीब एवं अभावग्रस्त समझते हों तो समझे पर अपनी विभूतियों का मूल्य समझते हुए वह स्वामी रामतीर्थ की तरह अपने को राम-बादशाह ही समझता है। समझता ही नहीं-उसी स्तर की प्रसन्नता एवं संतुष्टि भी अनुभव करता है। जिनके प्रकाश से जन समाज को श्रेय पथ पर चलने का मार्ग दर्शन मिलता है, जो अपने अनुकरण की प्रेरणा देकर असंख्यों को उठाते, उबारते, बढ़ाते और पार करते हैं, वे आत्म-बल सम्पन्न महामानव ही होते हैं। चारित्र के धनी, करुणा दया, परिपूर्ण हृदय उदारता और आत्मीयता से ओत-प्रोत व्यक्तित्व आत्म-बल के ही प्रतीक हैं। ऐसे महाभाग देवदूतों की तरह जीवन मुक्त की तरह जीते हैं। संसार उनकी उपस्थिति से सुगंधित, सुरभित, समुन्नता और व्यवस्थित होता है। वे अपनी सामर्थ्य से दिशायें बदलने और हवाएं पलटने में समर्थ होते हैं। उन्हें धरती का देवता ही कहा जायेगा, भले ही साधारण गृहस्थ व्यवसायी के रुप में जीवन यापन करते हों अथवा लोकसेवी परमार्थी सज्नों की तरह पुण्य परमार्थ के प्रयोजनों में संलग्न हों। उनका आर्शीवाद जिन्हें मिल गया वह कृतकृत्य हो जाता है।

आत्म-बल वह क्षमता है, जिसका जितना अंश मनुष्य के पास होता, उतना ही वह अपने विवेक को सजग कर सकने में समर्थ होगा। विवेक ही वह सत्ता है जो धन, बुद्धि, स्वास्थ्य आदि की भौतिक शक्तियों को नियंत्रण में रखकर उन्हें सन्मार्गगामी बनाती है। सदुद्देश्य और सत्यप्रयोजनों में प्रवृत्त करती है। अध्यात्म स्तर के यह प्रयोग ही हमारी भौतिक उपलब्धियों को सार्थक बनाते हैं।

कौन नाथ ? कौन अनाथ ?

मगध सम्राट श्रेणिक हर तरह से सुखी और समृद्ध था । प्रजा की सतत हित चिंता करने के कारण मगध की प्रजा के दिल में श्रेणिक के कुशल नेतृत्व के कारण प्रजाजनों को किसी प्रकार का कष्ट नहीं था । एक दिन महाराजा श्रेणिक के दिल में वन भ्रमन की इच्छा पैदा हुई । महाराजा ने मंत्री से बात की। कुशल मंत्री तुरंत महाराजा के लिये तेजस्वी और बलिष्ठ घोड़ा तैयार कर दिया । महाराजा अश्व पर सवार हो गये ।

आगे-आगे श्रेणिक महाराजा और पीछे-पीछे उनका विशाल काफला वन में प्रवेश करने के बाद महाराजा अश्व पर से नीचे उतर गये और पास में आए हुए मंडितकुक्षि उद्यान की और पैदल ही आगे बढ़े, उद्यान की और पैदल ही आगे बढ़े उद्यान में चारों ओर हरियाली छाई थी । उस उद्यान में रंग बिरंगी पुष्पों से सुशोभित अनेक लता मंडप थे । चारों ओर शीतल और सुगंधित पवन मंद गति ले बह रहा था, जो पथिकों के त न से ताप और संताप को श्रण भर में ही हर लेता था । थोड़ी दूरी पर ध्वनि करती हुई नदी बह रही थी । कोयल का कुजन और भ्रमरों का गूंजन उद्यान की शोभा में चार चांद लगा रहे थे श्रेणिक महाराजा उद्यान के उस मनमोहक वातावरण में अत्यन्त ही प्रसन्नता और अल्लाद का अनुभव कर रहे थे । वे मस्ती भरे कदमों से धीमी गति से धीरे-धीरे वन-भ्रमण का आनंद लूट रहे थे । अचानक उसकी दृष्टि आम वृक्ष की घटादार छाया में बैठे हुए एक तेजस्वी मुनि पर पड़ी। युवा मुनि के देहलता मानो साक्षात क्रांति का पुज थी उसके सुकोमल देह पर कमल की भांति खिला हुआ यौवन नृत्य कर रहा था । गौर वर्ण, तेजस्वी आँखें, सदृढ़ देह, विशाल भाल तथा शांत प्रशांत धीर और गंभीर मुखमुद्रा दर्शक का मन मोह लेती थी । मुनि के मनमोहक बाह्य व्यक्तित्व को देखते ही श्रेणिक के नेत्र स्थिर हो गये । क्षण भर तक श्रेणिक उन तेजस्वी मुनि को देखते ही रह गये । श्रेणिक महाराजा विचारों का प्रवाह में बह गये । वे सोचने लगे, अहो इस युवा मुनि के जीवन में ऐसी कौन से समस्याएं खड़ी हुई होगी कि जिस कारण उन्हें यह संसार त्याग देना पड़ा ? क्या इन्हें अपने जीवन में धन की कमी महसूस हुई होगी ? क्या इनका पुत्र पत्नी पूरा परिवार प्रतिकूल होगा ? क्या किसी ने इनका अनादर किया होगा ? यदि संभव हो, में इनको पूछकर अपने मन का समाधान कैसे करुं ।

इस प्रकार सोच विचार कर श्रेणिक महाराज मुनि के निकट पहुंचे और इन्होंने हाथ जोड़कर मुनि के चरणों में प्रणाम किया । मुनि ध्यान में निमग्न थे । उनके नेत्र अर्ध उन्मीलित थे । मुनि के मुख पर किसी भी प्रकार की दीनता या ग्लानि नहीं थी । ये अपूर्व मस्ती के साथ कायोत्सर्ग की साधना के द्वारा आत्मानुसंधान कर रहे थे । थोड़ी ही देर में मुनि ने अपना कायोत्सर्ग पूर्ण किया और अत्यंत ही वात्सल्य पूर्ण शब्दों में महाराजा श्रेणियों को धर्मलाभ की आशीष प्रदान की मुनि श्री के वात्सल्य पूर्ण शब्दों ने श्रेणिक के दिल पर जादूई असर किया श्रेणिक मुनिश्री के चरण-कमलों का भ्रमर हो गया । श्रेणिक ने कहा- भगवंत एक प्रश्न पूछूं ? मुनि ने जवाब दिया, जरुर पूछो दिल में उठी शंका का समाधान अवश्य करना ही चाहिये ।

हे महात्मन यौवन के प्रागन में कुछ समय पूर्व ही आपने प्रवेश किया लगता है । आपकी देहलता पर यौवन का मादुर्य नित्य कर रहा है । इस अवस्था में तो हर युवक, यौवन की मदभरी मस्ती में मशगूल रहता है और भोग सुखों में मस्त बनकर अपने यौवन को सफल बनता है.... जबकि इसी उम्र में आपने उन समस्त सुखों को तिलांजलि देकर यह कटिला पथ क्यों स्वीकार किया ?

क्या गृहस्थ जीवन में आपको कोई कष्ट था.... समस्या थी ? मुनिवर ने कहा- राजन बंधन मुक्ति और आत्म कल्याण की साधना के लिये यौवन को छोड़कर दूसरा कौन सा समय सर्वश्रेष्ठ हो सकता है ? सच तो यह है कि मैंने इस संसार का त्याग किया, क्योंकि मैं अनाथ था । श्रेणिक ने ज्यों ही मुनिश्री के मुख से अनाथ शब्द सुना वह आश्चर्य- मुग्ध हो गया और बोला, आप अनाथ कैसे ? ओहो किसी नाथ के आभाव में आपने यह संसार छोड़ा है न, तो मैं आपका नाथ बन जाऊं मैं आपकी हर सुख सुविधा का ख्याल रखूंगा, आप इस कटीले पथ को छोड़दें और मेरे साथ राजमहल चलें आपको किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं होगा । आप मस्ती से जीवन जीएं और अपने जीवन को सफल बनाएं । श्रेणिक की इस बात को सुनकर सस्मित मुनि ने कहा, श्रेणिक जब तुम स्वयं अनाथ हो तो तुम मेरे नाथ कैसे बन सकोगे ? जो स्वयं दरिद्र

है, वह दूसरे के दरिद्रय को कैसे दूर कर पाएगा ? जो स्वयं मूर्ख है, वह दूसरे को क्या समझाएगा ?

मुनिश्री के मुख से इस प्रत्युत्तर को सुनकर श्रेणिक को बड़ा ताज्जुब हुआ आहो क्या ये मुनि मेरी भौतिक समृद्धि से अपरिचित है ? उन्हें जरुर मेरी संपत्ति का परिचय कराना होगा, इस प्रकार सोचकर श्रेणिक बोला, मुनिवर मैं अनाथ कैसे ? क्या आप मुझे पहचानते हो ? मैं मगध का सम्राट श्रेणिक हूं। मगध की प्रजा का मैं आधार हूं। मेरे रहने के लिये विशाल राजमहल है। मेरी सुरक्षा के लिये अंगरक्षक सतत नंगी तलवार लिये खड़े रहते हैं। मेरा विशाल परिवार है। बुद्धिनिधान अभयकुमार जैसे मेरे पुत्र हैं। चेलना आदि अनेक महारानियों का मैं स्वामी हूं। मेरा राजभवन धन-धान्य से समृद्ध है। मेरे शरीर में किसी प्रकार का रोग नहीं है। समस्त मंत्री जन, सामंत जन और प्रजाजन मेरी आज्ञा का पालन करते हैं। मैं मनचाहे ढंग से कहीं भी जा-आ सकता हूं। ऐसी कोई सूख सुविधा या सुख के साधन नहीं है जो मेरे लिये दुर्लभ हो। अतः हे मुनिवर ! मैं अनाथ कैसे ? श्रेणिक की बात सुनकर मुनिवर ने कहा- श्रेणिक ! ये सारी संपत्तियां, ये सारे वैभव-विलास के साधन तो मेरे पास थे। मैं भी कौशाम्यी देश के महाराजा का राजपुत्र हूं। यौवन के प्रांगण में प्रवेश करने के बाद अनेक रुपवती कन्याओं के साथ मेरा भी लग्न हुआ था। धन-धान्य और भौतिक समृद्धि से भरा-पूरा मेरा जीवन था। परन्तु श्रेणिक ! मात्र भौतिक समृद्धि के आधार पर अपने आपको नाथ के रुप में स्वीकार करना, यह केवल आपकी भ्रांति ही है। वर्षों पूर्व में अपने आपको सुखी मानता-समझता था...! परन्तु एक दिन मेरे जीवन में एक ऐसी आकस्मिक घटना बनी, जिसने इस भ्रांत मान्यता का पर्दाफाश कर दिया।

....एक दिन तीव्र अशाताकर्म के उदय से मेरे देह में भयंकर वेदना उत्पन्न हुई। उस वेदना के उपशमन के लिये मैंने भरसक प्रयत्न किये। मेरे माता-पिता ने भी अनेक वैद्यों को बुलाया और मेरी चिकित्सा करवाई, परन्तु वे सब निष्फल गए। रोग बढ़ता ही गया, ज्यों-ज्यों दवा दी। मैं फूल-सी सुकोमल शैय्या पर लेटा हुआ था परन्तु मुझे लेश भी शांति नहीं थी। नींद ने मेरा साथ छोड़ दिया था.... मैं अत्यन्त ही हैरान और परेशान था।

शय्या पर लेटे हुए एक दिन मैं विचारों की आंधी में खो गया। सोचने लगा, आहो ! इतनी धन-संपत्ति, इतना वैभव... इतने सुख के साधन.... इतना विशाल परिवार.... इतने स्वजन-कुटुम्बीजन ! इतना सब-कुछ होते हुए भी वे मेरी इस बीमारी को हटाने में समर्थ नहीं ! ओहो ! यह मेरी कैसी पराधीनता है ? आज तक मैं मानता था, धन वृद्धि से सुख बढ़ता है और दुःख घटता है। परिवार वृद्धि से बढ़ता है और दुःख घटता है। भौतिक वैभव और विलास के साधनों से सुख बढ़ता है और दुःख घटता है। परन्तु आश्चर्य !! आज मेरे पास यह सब कुछ होते हुए भी मैं सुखी नहीं, मैं शांत नहीं ! मेरा यह सब कुछ खो गया। ओह ! आज तक मैं जिस संपत्ति, पत्नी, परिवार व भौतिक साधनों के बलबूते पर इस प्रकार का गर्व कर लेता था कि मैं सुखी। आज मेरी यह मान्यता झूठी सिद्ध हो गई। जो संपत्ति.... जो परिवार मेरे वर्तमानकाल के दुःख में भी सहभागी बनने के लिये तैयार नहीं है, वह मेरी भविष्य की वेदना को तो कैसे दूर कर पाएगा ?

पुण्य के उदय से प्राप्त यह संपत्ति.... यह परिवार.... ये सुख के साधन कभी भी मेरे पास विश्वासघात कर सकते है, अतः मैं उनके भरोसे क्यों रहूं। क्यों न इनका त्याग कर अपनी आत्म साधना के मार्ग पर कदम उठाऊँ और स्वाधीन व निरपेक्ष सुख का भोक्ता बनूं।

हे श्रेणिक ! इस प्रकार विचार कर ही मैंने स्वेच्छा से संसार के क्षणिक संबंधों का त्याग किया है, वह भी स्वाधीन और निरपेक्ष सुख को पाने के लिए। ऐसा आत्म-सुख जिसे पाने के बाद मुझे कभी भी जन्म-मरण के जाल में भटकना नहीं पड़ेगा, ऐसा सुख जो सदा स्थायी होगा, अक्षय होगा, अविनाशी होगा और स्वाधीन होगा।

हे श्रेणिक ! अब आप ही कहो ! क्या आप सच मायने में नाथ हो ? या अनाथ हो ? गंगा के निर्मल जल की भांति अस्खलित बहती हुई उस उपदेश-गंगा में श्रेणिक ने आत्मस्नान किया। उसका चित्त प्रसन्नता से भर आया और बोला, भगवंत ! आज तक मेरी आत्मा अज्ञान के अंधकार में डूबी हुई थी। नाथ-अनाथ के वास्तविक भेद को मैं पहचान नहीं सका था। आपकी उपदेश-वाणी ने मेरे अज्ञान-अंधकार को दूर किया। आज मुझे सत्य की प्रतीति हुई है। आज में नाथ-अनाथ के रहस्य को समझ सका हूं। हे प्रभो ! सच मायने में हम अनाथ ही हैं।

श्रेणिक ने अत्यन्त ही सद्भाव पूर्वक मुनि के चरणों में प्रणाम किया.... और उस अनाथी मुनि के उपदेश से ही श्रेणिक महाराज ने अपने जीवन में सम्यग्दर्शन प्राप्त किया।

पू. आचार्यश्री अपूर्वमंगलरत्नसागर सूरीश्वरजी महाराजा की तृतीय पुण्यतिथि २५ मई पर शब्दांजली

देवनगर की अपूर्व मालव विभूति

पू. आचार्य श्री अपूर्वमंगलरत्नसागर सूरीश्वरजी महाराज का व्यक्तित्व जिन रेखाओं से निमित्त हुआ है वे बहुत ही स्पष्ट है उन्हें श्लाघा में रंगने की कोई आवश्यकता नहीं है,आचार्यश्री को शब्दों से नहीं,अनुभूति से जाना जा सकता है फिर भी जनसामान्य शब्दों से मुक्ति नहीं पा सकते इसलिये विराट को लघु में बांधने का प्रयत्न किया जाता है। आचार्यश्री का जन्म देपालपुर में हुआ था।युवा वय में आपने जैन धर्म के सर्वमान्य, सर्वोत्कृष्ट आचार्यश्री नवरत्नसागर सूरीश्वरजी महाराज से संयास प्राप्तकर दीक्षा धारण की और आचार्य पद तक का सफ र तैय कर आध्यात्मिक, सामाजिक व नैतिक मूल्यों की स्थापना के लिये पूरे देश में आपश्री ने पदयात्राएं कर उत्कृष्ट जीवन जीया।

गेहुं वर्ण, लम्बा कद, भव्य ललाट, तेजस्वी और दीर्घ आंखें, हंसता-मुस्कराता प्रशांत रूप यह उनका प्रथम दर्शन जिसने मुझे ही नहीं न जाने कितनों को अपनी और आकृष्ट किया था। प्रसन्न मन, सहज, ऋजुता, सबके प्रति समभाव आत्मीयता की तीव्र अनुभूति विशाल चिंतन, विरोध के प्रति अनुद्विग्न, जातीय, प्रांतीय, साम्प्रदायिक विवादों से मुक्त उनका महान व्यक्तित्व जो अदृश्य होकर भी निकट आने वालों के सदा दृश्य ही बना रहता था।

आचार्यश्री के निकट आकर जो मैंने अनुभूत किया-

* सृष्टि में चार प्रकार के मनुष्य होते है एक सुपारी की तरह जो भीतर बाहर से कठोर होते हैं, दूसरे बेर की तरह जो बाहर से मृदु भीतर से कठोर होते हैं, तीसरे नारियल की तरह बाहर से कठोर भीतर से मृदु होते है, चौथे किसमिस की तरह भीतर बाहर से मुलायम ही मुलायम होते हैं। सुई की नोक भी चुभाओंगे तो नोक टूटती नहीं बल्कि मीठी हो जाती है ऐसे ही हैं पू.आचार्यश्री अपूर्वमंगलरत्नसागर सूरीश्वरजी महाराज थे।

* आचार्यश्री जितने तार्किक थे उतने ही श्रद्धालु भी थे, जिनशासन के प्रति उनकी श्रद्धा और भगवान श्रीमहावीर की वाणी के लिये प्राणपन से समर्पित रहे है। वे श्रद्धा और तर्क का अनूठा संगम थे।

* आचार्यश्री में मैंने पाया था कि वे वैयक्तिक जीवन में जितने आध्यात्मिक थे उतने ही सामुदायिक जीवन में व्यवहारिक भी थे।

* आचार्यश्री की सोच इतनी सामायिक रही है कि उसे वर्तमान समय की धारा का स्रोत कहा जा सकता है।

* आचार्यश्री ने धर्म प्रभावना व जनकल्याण के लिये जो भी नए उपक्रमों का सूत्रपात किया था वह सभी के लिये अनुकरणीय बन गये।

* आचार्यश्री हमेशा संख्या में नहीं गुणों में विश्वास रखते थे।

* आचार्यश्री में मैंने पाया था कि वे इसकी परवाह नहीं करते थे उनके तथ्यों को लोग पचा पाएंगे या उनके विचारों को समाज मान्यता देगी यह धारणा बनाकर वे सत्य के खोजी नहीं बनते।

* अक्सर लोग उनको अपनी क्रिया में लीन देखते थे वे अपने पवित्र उद्देश्यों की साधना में लीन रहते थे यही वजह है कि लोग उनके अनुयायी बनने के लिये लालायित रहते थे।

*आचार्यश्री का मानना था कि शक्ति व प्रभाव में दबकर जो धर्म किया जाता है वह अधर्म है, धर्म तो हृदय परिवर्तन व सहज प्रवृत्ति में पनपता है।

* आचार्यश्री संवेदनशील थे उन्होने जीवन मे अनेकों सूक्ष्म अनुभव प्राप्त किए थे, जिनसे अंर्तज्ञान, सम्यक्त्व, साधना और उनकी संवेदनशीलता का परिचय इससे मिलता है कि वे दूसरों की नहीं अपनी कमजोरियों को पहचानते थे।

* आचार्यश्री व्यक्तिगत भी थे और सार्वजनिक भी थे जैन दीक्षा लेना उन्हें व्यक्तिगत बनाता है और परोपकार की भावना उन्हें सार्वजनिक बनाती है। इसलिये मैं कह सकता हूं कि- वे अपने भी थे और सबके भी थे।

* आचार्यश्री के सानिध्य में आकर नए जीवन की प्रेरणा मिलती थी, सन्यास हंसता खिलखिलाता व मुस्कराता था ।

* आचार्यश्री का त्याग नीरस व उदास नहीं है बल्कि उनका त्याग, उनकी साधना जीवन को जीने योग्य बनाती रही है।

* आचार्यश्री के दयार्द्र मानस का परिचायक हृदय तीर्थ है। उनका मानना था कि जीवन मुक्ति की साधना तभी हो सकती है जब जीवन टिके और जीवन तभी टिकता है जब उसे अन्न, पानी व प्रेम का बल मिले, इसलिये मैं कह सकता हूं आचार्यश्री विश्वभर के मानव उत्थान का नेतृत्व करते रहे हैं।

* आचार्यश्री के प्रवचनों में मिठास ही नहीं अपितु कटुता, प्रहार,वाणों की वर्षा रहती थी वे व्यक्तिगत आपेक्षों से बचते थे पर सामाजिक कुरीतियों की धज्जियां उड़ाते समय निर्भीक हो जाते थे।

*** मैं आचार्यश्री से जुड़कर उनके साथ ही नहीं हुआ था बल्कि अपने को उनका एक हिस्सा मानता हूं इसलिये आचार्यश्री आज तक मेरे हृदय में स्थान बनाए हुवे है क्योंकि जहां निकटता होती है वहां सारे प्रश्न खत्म हो जाते है।**

*** आचार्यश्री में मैंने पाया था कि आध्यात्मिक समृद्धि ज्ञान रक्षा, दुःख-क्षय सर्व संबर्धन-सरंक्षण उनके पास आते ही स्वतः प्रकट हो जाते है। आचार्यश्री के निकट आते ही मन की अनेकों जटिल समस्याओं का स्वतः समाधान हो जाता था ।**

*** आचार्यश्री के मौन में मुखरता और मुखरता में भी मौन की सुखद अनुभूति होती थी।**

*** आचार्यश्री के जीवन में सुबह ध्यान, दोपहर ज्ञान और शाम प्रार्थना बनकर आती थी।**

आचार्यश्री ने हमें अनुशासन से नहीं प्रेमानुशासन अनुशासित किया यह प्रेमानुशासन अन्यत्र मिलना संभव नहीं तो दुर्लभ तो है ही।

*** शिष्यों के दोषों को पचाकर आगमानुसार प्रायश्चित देना वह आचार्यत्व का महत्वपूर्ण गुण होता है जो आचार्यश्री में था। जिसे सभी शिष्यों ने अनुभूत किया हैं।**

''ऐसे दिव्य सतुगुरू के अविर्भाव से आपके स्मरण से मानवता को, अध्यात्म को, व जिन शासन को आज भी नई दिशा मिल रही है ऐसे सद्गुरू देव के पावन चरणों में मुझ अकिंचन का उनके श्रीचरणों विनम्र विनयांजलि सहित कोटिशः वंदन। प्रभु से प्रार्थना करता हूं कि वे वे चिरंतन हो जिससे मानवता जीवित रहें, संयम खिलता रहे, अध्यात्म फलता रहे।''

मेरी श्रद्धालोक के देवता **पूज्यपाद आचार्यदेव श्री अपूर्वमंगलरत्नसागर सूरीश्वरजी महाराजा** *का सानिध्य हम आज भी अनुभव करते है हमारी यह आरजू और तमन्ना है कि पूज्य गुरुदेव का शुभ मंगल भावयुक्त धर्मलाभ हमें भी प्राप्त होता रहे। ताकि आपश्री के जाने के दुख से हम उभर सकें। यही मंगल अभिलाषा।*

खुशबू आपकी गुरुवर हमेशा मेरी सांसों में रहती है,
सूरत आपकी गुरुवर हमेशा मेरी आँखों में रहती है।
आस-पास रहो या न रहो गुरुदेव आपकी याद हमेशा मेरी सांसों में रहती है।

यह दरिद्रता नहीं अपरिग्रह है

राजा जनक महल की छत पर सोए हुए थे। हंस-हंसिनी अटारी की मुंडेर पर बैठे वार्तालाप करने लगे। हंसिनी बोली- इन दिनों सबसे बड़े ब्रह्मज्ञानी राजा जनक हैं। हंस ने बात काटकर कहा- तुम रैक्य को नहीं जानती! अपने समय के वे ही सबसे बड़े ब्रह्म-ज्ञानवेत्ता हैं। हंसिनी ने पूछा- भला कौन है रैक्य? हंस ने उत्तर दिया- अरे वह गाड़ी वाला रैक्य, जो गाड़ी खींचकर बोझ ढोता और अयाचित वृत्ति से निर्वाह करता है।

जनक अधजगे थे। वे पक्षियों की भाषा जानते थे। हंस-हंसिनी की वार्ता ध्यानपूर्वक सुनने के निमित्त करवट बदलने लगे। आहट पाकर हंस-युग्म चौकन्ना हुआ और उड़ गया। बात अधूरी रह गई।

राजा को नींद नहीं आई। रैक्य कौन है? कहां रहते हैं? उनसे संपर्क कैसे सधे? यह विचार उन्हें बेचैन किये हुए था। सबेरा होते ही दरबार लगा। राजा ने सभासदों से गाड़ी वाले रैक्य को ढूँढ़ निकालने का आदेश दिया। बहुत दौड़-धूप के बाद रैक्य का पता चला। राजदूतों ने उनसे जनकपुर चलने का अनुरोध किया जिसे उन्होंने अस्वीकार कर दिया। मुझे राजा से क्या लेना-देना। अपना प्रस्तुत कर्त्तव्य पूरा करूं या इधर-उधर भागता फिरूँ। दूतों ने सारा विवरण जा सुनाया। जनक स्वयं ही चल पड़े और वहां पहुंचे, जहां रैक्य गाड़ी खींच-धकेलकर निर्वाह चलाते और साधना-सेवा का समन्वित कार्य करते थे।

राजा ने इतने बड़े ब्रह्मज्ञानी को ऐसा कष्ट साध्य जीवनयापन करते देखा, तो द्रवित हो उठे। सुविधा-साधनों के लिये उन्होंने धनराशि प्रस्तुत की। अस्वीकार करते हुए रैक्य ने कहा-राजन्! यह दरिद्रता नहीं अपरिग्रह है, जिसे गँवा बैठने पर तो मेरे हाथ से ब्रह्म तेज भी चला जाएगा। तत्वज्ञान के अनेक मर्म-रहस्यों को सत्संग में जानने के उपरांत जनक यह विचार लेकर वापस लौटे कि विलासी नहीं, अपरिग्रही ही सच्चा ब्रह्मज्ञानी हो सकता है, उन्हें नई दिशा मिली। उस दिन से उन्होंने अपने हाथों कृषि करने, हल चलाने की नई योजना बनाई और श्रम-उपार्जन के सहारे निर्वाह करते हुए राजकाज चलाने लगे।

कैसी हो साक्षी भाव की सिद्धि !

अमेरिका के कुछ वैज्ञानिकों ने एक परीक्षण के लिये किसी व्यक्ति को ऑपरेशन टेबुल पर लिटाया और उसे कुछ मिनटों के लिये सम्मोहित कर सुला दिया। जब वह सम्मोहन अवस्था में सो रहा था, तो उसके गले पर एक छुरी चुभाई गई। उससे खून की एक बूंद छलक पड़ी। इसके बाद ही वैज्ञानिकों ने उसकी सम्मोहन निद्रा तोड़ दी और जगा दिया। यह सारा प्रयोग कुछ ही मिनटों में हो गया था और जितने समय तक वह व्यक्ति सोया, वह तो कुछ ही सेकंड थे। उन कुछ ही सेकंडों में उस व्यक्ति ने एक लंबा सपना देख लिया था।

डॉ. अलेक्जेंडर लिंबार्ड ने उस स्वप्न का उल्लेख करते हुए लिखा है कि इन कुछ ही सेकंडों में उस व्यक्ति ने एक आदमी की हत्या कर दी थी। वह महीनों तक लुकता-छिपता रहा था। अंततः पुलिस ने उसे गिरफ्तार कर लिया। उस पर हत्या का मुकदमा चला। मुकदमे का फैसला होने में दो-ढाई साल लगे। जज ने उसे मृत्युदंड की सजा सुनाई और उसे जब फांसी के तख्ते पर चढ़ाया जाना था, तो उसी क्षण उसकी नींद खुल गई।

वैज्ञानिकों का कहना था कि इस प्रयोग में वह व्यक्ति पांच-सात सैकंड ही सोया था और इस अवधि में उसके लिये वर्षों का घटनाक्रम गुजर गया। वह प्रयोग आइस्टीन समय सिद्धांत की सत्यता जानने के लिये किया जा रहा था, जिसके अनुसार समय का कोई स्वतंत्र अस्तित्व ही नहीं है। वह दो घटनाओं के बीच की दूरी मात्र है, जो कुछ भी हो सकता है परन्तु मनुष्य को अपने ज्ञान एवं अनुभूति के आधार पर ही लंबी अथवा छोटी लगती है।

क्या सचमुच समय कुछ भी नहीं है? सुबह से शाम तक और शाम से सुबह तक २४ घंटे होते है। इन चौबीस घंटों में हम कितने ही काम करते है। घड़ी अपनी चाल से चलती है। सूर्य अपनी गति से क्षितिज के इस पार से उस पार तक पहुंचता है। सब कुछ तो स्पष्टतः प्रतीत होता है, परन्तु आईस्टीन के अनुसार यह सब एक भ्रम मात्र है। फिर तो सारा संसार ही भ्रम हो जाएगा।

वस्तुतः सारी दुनिया ही एक भ्रम मात्र है। वेदांत दर्शन के अनुसार संपूर्ण जगत ही मायामय है। माया अर्थात जो नहीं होने पर भी होता दिखाई दे। जिसका अस्तित्व नहीं है, लेकिन भासित होता है। आदि शंकराचार्य ने इस माया को परिभाषित करते हुए कहा है, माया यथा जगत्सर्वमिदं प्रसूयतो अर्थात वही माया है, जिससे यह सारा जगत उत्पन्न हुआ है।

आइंस्टीन से पहले इंद्रिय बुद्धि द्वारा होने वाले अनुभवों और प्रत्यक्ष जगत को ही सत्य समझा जाता था। इसके पूर्व के वैज्ञानिकों की मान्यता थी कि आप दौड़ रहे हों अथवा बैठे हों, जाग रहे हों या साए हों, समय अपनी सीधी बंधी रफ्तार से सीधा आगे बढ़ता है, परन्तु आइंस्टीन के सापेक्षता सिद्धांत ने इस मान्यता को छिन्न-भिन्न कर दिया और यह सिद्ध हो गया है कि समय कुछ घटनाओं का जोड़ भर है। यदि घटनाएं न हों तो समय का कोई अस्तित्व नहीं होता घटनाएं भी द्रष्टा की अनुपस्थिति में अस्तित्वहीन होती है।

इस बात को कतिपय उदाहरणों द्वारा आसानी से समझा जा सकता है। समय को मापने का सबसे बड़ा मापदंड घड़ी है। घड़ी में सैकंड की सुई १२ से चलकर १२ तक पहुंचने पर एक मिनट होता है। मिनट की सुई इतनी दूरी तय कर लें, तो मान लिया जाता है कि एक घंटा हो गया और घंटे की सुई इतनी दूरी तय कर लेने पर आधा दिन आधी रात बता देती है और १२से १२ तक दूसरी बार पहुंचने पर २४ घंटे या दिन पूरा हुआ मान लिया जाता है। आइंस्टीन का कहना था कि घड़ी की सुई की गति बढ़ा दी जाए, तो यही २४ घंटे ३६ घंटे में भी बदल सकते हैं और कम कर दी जाए तो २० या उससे भी कम चाहे जितने हो सकते हैं अर्थात यह बात अर्थहीन है कि दिन २४ घंटे का होता है अथवा उससे कम-ज्यादा का।

इसी के अनुसार घड़ी का यह समय-विभाजन पृथ्वी द्वारा सूर्य की एक परिक्रमा पूरी कर लेने वाली घटना को आँकने के लिये किया गया। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि पृथ्वी एक बार सूर्य की परिक्रमा कर लेती है, तो २४ घंटे हो जाते है, लेकिन चंद्रमा सूर्य की परिक्रमा करने में इससे भी अधिक समय लगाता है, मंगल उससे भी अधिक और शुक्र उससे भी अधिक, तो पृथ्वी के २४ घंटों में चंद्रमा, मंगल या शुक्र का एक दिन नहीं होता है। वहां इससे अधिक समय में दिन-रात होता है अर्थात वहां के

लिये दूसरे टाईम स्केल (समय मापदंड) निर्धारित करने पड़ेंगे। आइंस्टीन के अनुसार समय इसी प्रकार घटनाओं पर निर्भर करता है। सोए हुए व्यक्ति के लिये बाहरी जगत में भले ही पांच मिनट का समय व्यतीत हुआ हो, किंतु वह जो स्वप्न देख रहा होता है, उसमें उन पांच मिनटों के भीतर वर्षों की घटनाएं घटित हो जाती है, तो उसके लिये पांच मिनट बीत गये, यह कहना सही होगा अथवा यह कहना कि वर्षों बीत गए! यह विचारणीय है।

योगी यती निमिष मात्र में सामने वाले का भूत, भविष्य, वर्तमान जान जाते हैं, जबकि सामान्य व्यक्ति उसका लेखा-जोखा ले, तो उसे जन्म से बचपन, बचपन से यौवन और वर्तमान जानने में ही काफी लंबा समय लग जाएगा, जबकि भविष्य उसके लिये अविज्ञान स्तर का बना रहता है। किसी प्रकार उसे भी जानने की कोई विद्या उसके पास हो, तो जन्म से मृत्युपर्यंत की घटनाओं की जानकारी एवं उनका आकलन, परीक्षण और विश्लेषण करने में शायद एक व्यक्ति का संपूर्ण जीवन लग जाए। ऐसा क्यों होता है? इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि स्थूल जगत और सूक्ष्म जगत के 'टाइम स्केल' भिन्न-भिन्न है। दोनों जगतों की घटनाओं को एक ही मापदण्ड द्वारा आंका और मापा नहीं जा सकता।

एक बार सूर्य विज्ञान के प्रणेता स्वामी विशुद्धानंद के पास रामजीवन नामक उनका एक शिष्य आया और अपनी टूटी हुई रूद्राक्ष माला को उन्हें देते हुए योग विद्या द्वारा उसे शास्त्रीय ढंग से गूंथ देने का आग्रह किया। विशुद्धानंद ने रूद्राक्ष के मनकों को एक झोले में रखा और थैले का मुंह बंद कर उसे दो-तीन बार ऊपर-नीचे किया। इसके बाद तैयार माल को निकालकर उसे सौंप दिया। शिष्य के आश्चर्य का ठिकाना न रहा, कारण कि उसकी कल्पना में माल तैयार होने में कम से कम पांच-सात मिनट लगने चाहिये थे, पर वह तो क्षणमात्र में तैयार हो गई। बाद में स्वामीजी ने बताया कि इसे 'क्षण विज्ञान' के प्रयोग से इतनी जल्दी बनाया जा सका।

प्रसंगवश यहां अध्यात्म जगत की चर्चा हो गई। भौतिक जगत में पुनः वापस लौटते हुए अब यह देखते हैं कि वहां घटनाओं के अतिरिक्त समय का अस्तित्व और किस पर निर्भर है। विचार मंथन से ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्य की बोध शक्ति पर भी समय की सत्ता आधारित है। उसका द्रुत या धीमी गति से गुजरना, यह पूर्णतः उसके बोध पर आश्रित है। कई बार ऐसा लगता है कि समय बिताए नहीं बीतता। दूर स्थान से अपने किसी अति आत्मीय स्वजन का दुःखद समाचार आया हो और वहां पहुंचना हो, तो गाड़ी आने में दस मिनट की देरी भी घंटों-सी लगती है, क्योंकि व्यक्ति उस समय तनावग्रस्त और उद्विग्न मनः स्थिति में होता है, लेकिन किसी सुखद समारोह में भाग लेते समय, विवाह-शादी के अवसर पर यह पता भी नहीं चलता कि समय कब बीत गया। उस समय व्यक्ति की बोध-शक्ति, चेतना पूरी तरह तन्मय हो जाती है और समय भागता-सा प्रतीत होता है।

इसे मच्छर के भी उदाहरण से समझा जा सकता है। मच्छर की आयु कुछ घंटों की होती है। वह इतने में ही एक मनुष्य की संपूर्ण उम्र जी लेता है। इतनी अवधि में ही वह बच्चा, जवान, बूढ़ा सब कुछ हो जाता है और हमारे अनुसार थोड़े-से घंटों तथा उसके अपने अनुसार ७०-८० वर्ष की आयु पूरी कर मर भी जाता है। इसका कारण प्रत्येक जीव-जंतु की अलग-अलग बोध सामर्थ्य है और उसी के अनुसार समय सिमटता और फैलता है।

घटनाओं और बोध-शक्ति के अतिरिक्त सापेक्षतावाद के अनुसार समय की चाल गति पर भी निर्भर करती है। आइंस्टीन ने सन् १९०४-१९०५ में सापेक्षता का यह सिद्धांत प्रतिपादित किया कि गति का समय पर भी प्रभाव पड़ता है। उसके अनुसार गति जितनी बढ़ेगी, समय की चाल उतनी ही घटती जाएगी। उदाहरण के लिये, एक अंतरिक्षयान प्रकाश की गति अर्थात् एक लाख छियासी हजार मील प्रति सेकंड की गति से चलता हो, तो उसमें बैठे व्यक्ति के लिये समय की चाल एक बटा सत्तर हजार हो जाएगी अर्थात प्रकाश की गति से चलने वाले यान में बैठकर कोई व्यक्ति नौ प्रकाश वर्ष (नौ वर्ष में प्रकाश जितनी दूरी तय करें) दूर स्थिर किसी तारे पर जाए और वहां से तुरन्त लौट पड़े तो इस यात्रा में अठारह वर्ष लगेंगे, लेकिन उस यान में बैठे व्यक्ति के लिये यह समय अठारह वर्ष का सत्तर हजारवां भाग अर्थात सवा दो घंटे ही होगा।

ऐसा भी नहीं कि पृथ्वी पर सवा दो घंटे ही बीतेंगे। पृथ्वी पर तो वहीं अठारह वर्ष ही व्यतीत होंगे। उस व्यक्ति के सगे संबंधी भी अठारह वर्ष बूढ़े हो चुके होंगे। जिन बच्चों को वह १२-१३ वर्ष छोड़ गया होगा, वे ३०-३१ वर्ष

के मिलेंगे। उसकी पत्नी जो उससे उम्र में मात्र दो वर्ष छोटी ३५ वर्ष की रही होगी, वह बूढ़ी हो चुकेगी, किंतु वह व्यक्ति जिस आयु और जिस स्थिति में गया होगा, उसमें सिर्फ सवा दो घंटे का परिवर्तन हुआ होगा अर्थात उसकी आयु सवा दो घंटे ही बीती होगी। यह भी कहा जा सकता है कि वह अपनी पत्नी से आयु में सोलह वर्ष छोटा हो जायेगा।

यह बात पढ़ने-सुनने में अनहोनी और आश्चर्यजनक लगती है कि कोई व्यक्ति १८ वर्ष बाहर रहकर आए और जब लौटे, तो ऐसे मानो कुछ घंटे ही बाहर रहा हो। उसके चेहरे और शक्ल में भी कोई परिवर्तन न आए। उसे देखकर कोई यह भी न कह पाए कि इस बीच वह १८ वर्ष और बड़ा हो चुका है, लेकिन आइंस्टीन ने प्रमाणों और प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध कर दिखाया है। सापेक्षता के इस सिद्धांत को 'क्लॉक पैराडॉक्स' (समय का विरोधाभास) कहा गया है।

यद्यपि अभी कोई ऐसा यान बन नहीं सका, जिसके द्वारा की गई यात्रा से इस सिद्धांत की सच्चाई को अनुभूत किया जा सके, परन्तु समय विरोधाभास के जो समीकरण आइंस्टीन ने दिये, उनके अनुसार अमेरिका के भौतिकशास्त्री जोजफ हाफले और खगोलशास्त्री रिचर्ड किटिंग ने सन् १९७१ में दो बार प्रयोग किये। उन्होंने अपने साथ चार परमाणु घड़ियां ली और उनके साथ सर्वाधिक तीव्र गति से उड़नेवाले यान द्वारा पृथ्वी के दो चक्कर लगाए। ध्यातत्व है कि परमाणु घड़ियां सेकंड के खरबवें हिस्से तक का समय सही-सही बता देती है। हाफ ले और कीटिंग ने भूल-चुक से बचने के लिये हर तरह की सावधानियाँ बरती। प्रयोग पूरा होने के बाद उन्होंने पाया कि तीव्र गति के कारण परमाणु घड़ियों ने अंतर बता दिया। इसके बाद दोनों वैज्ञानिकों ने घोषणा की कि आइंस्टीन का 'क्लाँक पैराडॉक्स' सिद्धांत सही है।

समय की यह प्रतीति अनुभवकर्त्ता की गति पर आधारित थी। इसके अतिरिक्त घटनाएं और बोध भी इस प्रतीति के माध्यम हैं। इस प्रकार सापेक्षता के यह समस्त सिद्धांत वेदांत की मूल मान्यताओं का समर्थन करते हैं। समय को जानने का सर्वसुलभ और सबसे सरल माध्यम घटनाएं हैं। इसके अनुसार यहीं कहा जा सकता है कि यह विश्व और कुछ नहीं, घटनाओं का समुच्चय है तथा घटनाएं व्यक्ति की बोधशक्ति संकल्प-चेतना का ही प्रतिफल है। विराट ब्रह्म के संकल्प से उसकी उपस्थिति मात्र से यह मायामय संसार उत्पन्न हुआ। मनुष्य यदि चाहे, तो इस माया से मुक्त हो सकता है और सत्य के दर्शन कर सकता है, किंतु इसके लिये हमें पहले से बनी-बनाई घटनाओं को वस्तु जगत पर थोपना बंद करना पड़ेगा। तत्वदर्शियों ने इसी को साक्षीभाव की सिद्धि कहा है।

आइंस्टीन के 'समय विरोधाभास' सिद्धांत से मायावाद की और पुष्टि हो जाती है, जिसमें व्यक्ति को असंग भाव से कर्म करने की प्रेरणा दी गई है। उस स्थिति को प्राप्त हुए बिना सत्य का पता लगाया ही नहीं जा सकता, कारण कि समय का बोध (आब्जेक्टिव टाइम) निरंतर भ्रमित स्थिति बनाए रखता है। उदाहरण के लिये, पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है परन्तु दिखाई यह देता है कि सूर्य पूर्व से पश्चिम की ओर जा रहा है। चलती हुई रेलगाड़ी में से दूर तक देखने पर पेड़, वृक्ष, टीले और पृथ्वी ही दौड़ती हुई दिखलाई देती है, उसी प्रकार सीमाबद्ध अस्तित्व में यह सारी भ्रांतियाँ उत्पन्न होती है।

इन सब घटनाओं का साझी रहने वाला मायायुक्त अस्तित्व पहचाना जा सके, तो वस्तुस्थिति का ज्ञान सहज हो ही सकता है, तब जाना जा सकता है कि भिन्न-भिन्न स्तरों पर समय का पैमाना भिन्न-भिन्न क्यों होता है और यह कि 'समय' भी उस माया से मुक्त नहीं है, जिससे संसार आबद्ध है।

जड़ जगत की तरह 'समय' भी मायायुक्त है। हम इस माया से मुक्त होकर जब तक संसार के आदि कारण को नहीं समझेंगे, तब तक समय संबंधी सत्य को भी नहीं जान सकेंगे और बराबर उसके सापेक्ष अस्तित्व में ही उलझे रहेंगे।

❊ पन्ना धाय ❊

उदयसिंह तब छोटे थे। उनके बड़े होने तक राज्य का उत्तराधिकार बनवीर को सौंप दिया गया। उसके मन में लोभ आ गया और उदयसिंह को मार डालने का निश्चय किया। उदयसिंह की माँ का देहांत हो चुका था। उनका पालन-पोषण पन्ना धाय ने किया। क्रोध से भरा बनवीर एक दिन पन्ना धाय के पास पहुंचा और पूछा- उदयसिंह कहां है? पन्ना धाय ने अपने बच्चे को उदयसिंह बताकर उसकी बलि चढ़ा दी। उदयपुर का राज परिवार पन्ना धाय के इस ऋण को कभी भुला न सका।

बंद करो यह मैच !!!

सुना है किसी भूमि का प्रभाव ऐसा होता है कि वहां जन्म लेने वाला प्रत्येक इंसान सुसंस्कारों से सुवासित होता है और अवसर आने पर वह स्वयं की प्रतिभा को उजागर किये बिना नहीं रहता।

ऊंझा शहर भी एक ऐसी ही पवित्र भूमि है, जहां के प्रौढ़ ही नहीं किशोर भी अवसर आने पर मौत से खेलने को भी तैयार रहते हैं। कितनी ही बार परस्पर विरोधी ग्रुप भी एक होकर दुराचारियों का ऐसा सामना करते हैं कि देखने वाला दंग रह जाए। समय था दीपावली की छुट्टियों का, शहर के सारे लोग अपने-अपने रीति-रिवाजों से दीपावली का उत्सव मना रहे थे। इसी त्यौहार के दौरान शांतिनगर सोसायटी के जैन ग्रुप व जिमखाने के पटेल ग्रुप ने मिलकर क्रिकेट मैच का आयोजन किया। सोसायटी के पीछे विशाल मैदान में यह आयोजन रखा गया था।

त्रिदिवसीय क्रिकेट मैच में पटेल ग्रुप ने प्रथम दिन ही अपनी मजबूत बेटिंग द्वारा जैन ग्रुप को परास्त कर दिया। जैन ग्रुप के सदस्य हताश हो गए। कैप्टन विक्की ने दूसरे दिन नए व्यूह की रचना करी और पूरी टीम को उत्साहित कर दिया वव पूरे आत्मविश्वास के साथ मैच जीतने की तैयारी से मैदान में उतरे। जैसे युद्ध के मैदान में क्षत्रिय पराक्रम दिखाते है, वैसे जैन ग्रुप ने पटेल ग्रुप को करारी शिकस्त दी और मैच जीत गए। दोनों टीम के कैप्टन ने उस दिन सभी खिलाड़ियों की खास मीटिंग रखी और प्रतिपक्षी टीम को किस तरह परास्त करना उसका विचार करके रात्रि में 11 बजे सभी बिदा हुए। तीसरे दिन प्रातः दोनों टीम उमंग और उत्साह के साथ अपनी-अपनी आस्था के आयाम आदिनाथ प्रभु के मंदिर में तथा बालोज माता के मंदिर में श्रीफल और सवा रुपया चढ़ाकर ठीक 9 बजे मैदान पहुंच गए।

देख किशन ! टॉस जितने के बाद हम पहले बेटिंग करेंगे। पटेल ग्रुप के स्पिनर अनिल ने अपने कैप्टन किशन से कहा।ठीक है और ओपनर बेट्समेन कौन होगा ? यस सर मैं तैयार हूं, 18 वर्षीय मनीष ने बेट ऊंचा करके किशन के प्रश्न का उत्तर दिया।

तेरा साथी कहां है ? किशन ने पूछा- हम तो परदे के पीछे के खिलाड़ी है, सामने नहीं आते। किशन के पीछे खड़े सनी ने हंसते-हंसते जवाब दिया।

✱ मुनिश्री तारकचन्द्रसागरजी म.

इस तरफ विक्की की टीम भी बहुत उत्साहित थी। क्या विचार है विक्की पहले बेटिंग या फील्डिंग ? जैन ग्रुप के फास्ट बॉलर हेमु ने पूछा- विचार एक ही है, आज का मैच जीतना है। बेटिंग या फील्डिंग से कोई मतलब नहीं। इस बार हमें अपना शौर्य दिखाना ही होगा। विक्की के विचार सुनकर टीम का सबसे छोटा पर सभी का प्यारा खिलाड़ी चिंटु बोला तो आज अपना अर्धशतक पक्का।

बात चल रही थी और इतने में एम्पायर की सीट पर नियुक्त किये गये महेश भाई ने सीटी बजाई और दोनों टीम के कप्तानों को टॉस करने के लिये आमंत्रित किया। पीच के बराबर बीच में जाकर महेश भाई ने सिक्का उछाला और तुरन्त किशन बोला- 'किंग' विक्की के नसीब में क्रॉस था। विजय 'किंग' का यानि किशन का हुआ और खुशी से उसने पहले बेटिंग पसंद करी। मात्र दस मिनिट में दोनों टीम पूर्णतया जम चुकी थी। ओपनर बेट्समेन मनीष और सनी दोनों फास्टरों को ओवर में अधिक रन बनाना इस बात में पावरफूल थे।

प्रथम दो दिन मैच टेनिस बॉल से खेली गई थी। जबकि आज यह विशेषता थी कि मैच टेनिस से नहीं 'कोक' बॉल से खेलनी थी। प्रत्येक टीम के पास 3-3 बॉल थी। 20-20 ओवर प्रत्येक टीम के पास थे। केप्टन किशन ने मनीष को पहले ही कह दिया था कि हमें रन रेट से ऊंचा रखना है। बराबर 10 बजे मैच प्रारंभ हुआ। ओवर हेमु का था। प्रथम तीन बॉल मेडन गए और चौथी बॉल पर मनीष ने पूरी ताकत से बेट घुमाया और बॉल सीधी बाऊण्ड्री लाइन पार कर गई। बस, फिर तो मनीष और सनी ने ऐसी बेटिंग करी, मात्र 5 ओवर में 45 रन का स्कोर बना लिया। पटेल ग्रुप अत्यन्त उत्साहित हो गया। तालियों की गड़गड़ाहट और वी वोन्ट सिक्सर के नाद से वातावरण गुंजायमान हो गया।

ओवर के लिये केप्टन विकी स्वयं आया, सनी ने पहली ही बॉल में 4 रन लेकर टीम को खुश कर दिया परन्तु यह आनंद अधिक समय नहीं टिका क्योंकि दूसरी बॉल उसकी लास्ट बॉल थी क्योंकि यह बॉल से नन्हें से चिंटु ने साष्टांग दण्डवत सोकर केच ली। पहले विकेट से जैन गुप्त में कुछ चेतना आई।

रेगिस्तान में भटकते मुसाफिर को पानी मिलने से जैसा

आनंद होता है वैसा आनंद जैन ग्रुप को हुआ। तीसरा नंबर आया केप्टन किशन का। किशन और मनीष की जोड़ी ने भी जैन ग्रुप की ऐसी धुलाई करी 12 ओवर में 110 रन का स्कोर करके पटेल ग्रुप को आनंदित कर दिया।

और वहीं पर छोटा सा ड्रिंक ब्रेक हुआ। विकेट कीपर पिंटु बोला- अरे भाई ! मुझे तो लगता है कि यह दोनों इसी तरह खेलते रहे तो आज का मैच जीतना भारी पड़ेगा।

देखो मित्रों, हमारा लक्ष्य एक ही है, यानी आज का मैच जीतना ही है। इस प्रकार हताश होने से कुछ नहीं होगा, इन दोनों महारथी को कैसे आउटकरना इसका विचार करना चाहिये। विक्की ने जब खिलाड़ियों को इस प्रकार उत्साहित किया तब आउट स्पिनर अनिल ने अत्यन्त आवेश में कहा- आने वाली तीन ओवर में कुछ सोलीड (ठोस) परिणाम लाकर ही बताऊंगा। यह सुनकर सभी खिलाड़ियों में जोश आ गया। विक्की ने फिल्डिंग व्यवस्था अधिक मजबूत बनाई। सभी रवाना हुए।

वेटिंग अच्छी जम जाने से किशन और मनीष निश्चित तो थे ही साथ ही साथ ओवर कान्फिडेंस में थे और व्यक्ति जब ओवर कान्फि-डेंस में होता है तब वह लापरवाह हो जाता है और उसकी प्रगति वहीं रुक जाती है।

13 ओवर से 18 ओवर तक अनिल ने पटेल ग्रुप के 6 विकेट लेकर तहलका मचा दिया। उत्साह की अग्नि से उत्तेजित बना हुआ पटेल ग्रुप बर्फ जैसा ठंडा हो गया। इस प्रकार पटेल ग्रुप ने 20 ओवर में 8 विकेट के साथ 170 रन बनाए।एक घंटे विश्राम के बाद जैन ग्रुप के हेमु और अनिल ने बेटिंग शुरु करी। चार ओवर तक बराबर चला पर बाद में पटेल ग्रुप के फास्ट बोलर के सामने इनका ठिकाना मुश्किल हो गया। पतझड़ के पत्तों की तरह एक के बाद एक विकेट गिरती गई। फिर भी रन रेट अच्छा था। 10 ओवर में 8 विकेट और 100 रन।

विक्की और चिंटु की बेटिंग चालु थी। दोनों ने पटेल ग्रुप की अच्छी धुलाई करी। 18 ओवर में 160 रन बना लिए। तालियों की गड़गड़ाहट और विक्की....विक्की.... के नाम की गुंज ने दोनों को उत्साहित कर दिया।

विपक्ष टीम टेंशन में थी। मैच बराबर जमा हुआ था और ठीक उसी समय रेस में दौड़ते हुए घोड़ेकी तरह अत्यन्त तेज गति से दौड़ते हुए व मुंह से चित्कार करते हुए सुअरों का टोला क्रिकेट की पीच पर से गुजरा।

एम्पायर महेश ने इशारा करते हुए मैच को कुछ क्षणों के लिये रोका। सभी की निगाहें सुअर के सामने थी। कुछ मिनटों बाद 4-5 पंजाबी सिख हाथ में बड़ी लकड़ी व रस्सी लेकर मैदान में आए। इधर-उधर निगाहें फेंककर शिकारी कुत्ते की तरह सुअर के पीछे दौड़े।

दोनों टीम के सभी खिलाड़ी मैच छोड़कर इकट्ठे हुए क्योंकि वे शिकारियों के इरादों को समझ चुके थे। शिकारियों के पीछे एक गाड़ी भी थी जिसमें सात-आठ सुअर स्पष्ट दिख रहे थे। तुरन्त दोनों केप्टनों ने अपने खिलाड़ियों को कहा- बंद करो मैच और जिसके हाथ में जो आए वह लेकर दौड़ो और पकड़ो इन शिकारियों को।

22 खिलाड़ी और लगभग 35 लड़कों का समूह मारो-मारो, पकड़ो-पकड़ो चिल्लाने लगे व शिकारी के पीछे भागने लगे। किसी ने बेट, किसी ने स्टम्प, किसी ने बॉल और जिसके हाथ में कुछ नहीं था, उन्होंने बड़े-बड़ेपत्थर लिये और शिकारी के पीछे भागे।

तेज रफ्तार से भागती हुई ट्रेन जिस प्रकार जंजीर खिंचने से रुक जाती है, वैसे बच्चों की आवाज से शिकारी रुक गये।

6 फीट की हाइट, कसा हुआ शरीर, कोयले जैसे काले वे शिकारी थे। बच्चे जब शिकारी के करीब आए तब शिकारी बोला- ऐ छोरे क्यों आये हो, यहां पर ?

यही सवाल तो हम आपसे पूछना चाहते हैं ? बॉल उछालते-उछालते विक्की ने कहा।

अरे हम तो शिकारी है, सुअर पकड़ने आये है, और तुम लोग भाग जाओ यहां से वरना सुअर के साथ तुमको भी गाड़ी में पटक देंगे। शिकारी के बात सुनकर विक्की ने किशन से इशारे से पूछा- क्या करना है ? अरे करना क्या ? हम 35 और ये 5, एक को भी नहीं छोड़ना है। किशन ने इशारे में जवाब दिया।

दोनों के इस इशारे को देखकर शिकारी गाड़ी में लोहे के दो मोटे पाईप लाए और जौर से बोले- अरे साले, भागते हो कि नहीं, वर्ना एक-एक की चटनी बना दूंगा।

वे आगे कुछ बोले उससे पहले दोनों टीम के बॉलरों ने हाथ में रही कोक की बोतल को पूरी ताकत से फेंकी और बॉल सीधी दो शिकारियों के मुंह पर लगी।

तत्काल विक्की ने मिलेट्री के एक समर्थ कमांडर की अदा से जोर से आवाज लगाई- 'अटैक' और सभी खिलाड़ी

एक साथ पांचों शिकारियों पर टूट पड़े। थोड़ी ही देर में क्रिकेट मैदान युद्ध मैदान में बदल गया। इसी बीच दो लड़के सोसायटी में से बड़े लड़के को बुलाने गये। चिंटु और मनीष ने शिकारी की गाड़ी के कैरियर खोल दिये और सुअरों को बंधन से मुक्त कर दिया।

मौत की सजा में से मुक्त हुए कैदियों को जितना आनंद होता है उतना आनंद सुअरों को हुआ। सभी सुअर भाग गये। इस तरफ शिकारियों ने भी बच्चों को मजा चखा दिया, परन्तु जब सोसायटी में से 30-40 व्यक्तियों का समूह शिकारियों ने आते हुए देखा तो वे घबरा गये और जिस प्रकार पुलिस को देखकर चोर भाग जाते हैं वैसे ही शिकारी भाग गये और भागे तो ऐसे भागे कि वापिस पलट कर कभी ऊंझा की ओर देखा भी नहीं। खिलाड़ियों को भी बहुत चोंट आई थी पर इसका दर्द कम व बचाने का आनंद ज्यादा था। उन्हें हॉस्पिटल ले जाया गया। मैच ड्रॉ घोषित किया गया व इस अद्‌भूत विजय की खुशियां मनाई। ऐसा साहस क्या आज के युवकों में देखने को मिलेगा ?

तीव्रभाव का तात्कालिक फल

इस तरफ भीमा श्रावक के घर में इसकी स्त्री सुबह भजन और शाम को संध्यागान के रुप में कड़वे कठोर शब्द सुनकर क्लेश पैदा करनेवाली प्रतिकूल औरत थी, वह भी आज भीमा कुंडलीया के तीव्र भावना से किये हुए धर्म के प्रभाव से एकाएक सानुकूल हो उठी, पति को आते देख खड़ी थी, बहुमान पूर्वक मधुर वाणी से आदर-सत्कार कर कुशल समाचार पूछ कर, गरम पानी से पैर प्रक्षालन कर आसन पर बिठाया, पड़ोस में से भोजन की सामग्री उधार लाकर मिष्ठ भोजन बनाकर स्नेहपूर्वक पति को खिलाया।

सरल हृदय का भीमा श्रावक संघपति की सभा में बनी हुई सारी बात सरलता से पत्नी को कही, वह सुनकर परिवर्तित स्वभाववाली गृहिणी आनंदपूर्वक अनुमोदना करती है, इसके इस प्रकार के बरताव से भीमा श्रावक आश्चर्य चकित होकर बारबार सुकृत की अनुमोदना करता है, अब उस के आंगन में बंधी हुई गाय ने खूंटा तोड़ देने से खूंटे को मजबूत करके लगाने के लिये भीमा ने जमीन को जरा खोदा, इसमें से हजारों सोना महोरों से भरा हुआ चरु निकलता है, वह सोनामुहर लेकर स्त्री की अनुमति पाकर, वह संघपति के तंबू में आया और वह सब सोना मोहरें उद्धार फंड में लेने के लिये मंत्रीश्वर को विनंती करता है, तब मंत्रीश्वर कहते है, अब उद्धार फंड का कार्य समाप्त हो जाने से जरुर नहीं है और यह लक्ष्मी तुम्हारे पुण्यप्रभाव से मिली है, तो उसका उपयोग भी तुम करो। मंत्री ने सुवर्ण लेने से मना किया, भीमा विनंती करके गया, तब रात्रि हुई, रात में कपर्दीयक्ष ने स्वप्न में भीमा को कहा कि- भीमा ! एक रुपये के पुष्प लेकर श्री आदिश्वर भगवंत की तूने पूजा की, इससे प्रसन्न होकर मैंने ही तुझे सुवर्ण का चरु दिया है, इसलिये तुम अपनी इच्छा अनुसार उसका उपयोग करो। सुबह भीमा ने मंत्री को बात बतायी, प्रभु की सुवर्ण रत्नों और पुष्पों से पूजा की, अपने घर आया और पुण्य कार्य में प्रवृत्त हुआ।

दो साल बाद जब जीर्णोद्धार पूर्ण होने के समाचार मंत्री को मिले तब सूचना देनेवाले को मंत्री ने बधाई स्वरुप में सोने की बत्तीस जिह्वाएं दी। कुछ देर बाद दूसरे आदमी ने आकर प्रासाद में किसी कारण से दरार पड़ जाने के समाचार दिये, तब मंत्री ने उसको सुवर्ण की चोसठ जिह्वाएं दी। पास में बैठे लोगों ने इसका कारण पूछा, तब मंत्री ने कहा कि-मेरे जीतेजी प्रासाद फटा वह ठीक ही हुआ, क्योंकि मैं फिर से दूसरी बार बनवाऊंगा, मेरे मरने के बाद यह मंदिर टूट पड़ा होता तो उसको कौन करवाता ? मेरे जीतेजी यह फट गया तो अब मैं ही इसे वापस बनवाउंगा। मंत्री ने शिल्पियों को प्रासाद फट जाने का कारण पूछा, शिल्पियों ने कहा कि प्रदक्षिणा-फेरीवाले प्रासाद में हवा घुस जाने से एवं निकलने की जगह न होने से हवा के जोर से प्रासाद फट गया, मंदिर यदि प्रदक्षिणा रहित बनाया जाए तो प्रासाद बनानेवाले को संतान नहीं होती है, वैसा शिल्पशास्त्र में लिखा है । यह सुनकर मंत्री ने कहा कि किसकी संतति कायम रही है ? इसलिये मुझे वास्तविक धर्मसंतति ही चाहिये। फिर दोनों दीवारों के बीच में मजबूत शिला लगाकर प्रासाद पूर्ण कराया, फिर से जीर्णोद्धार में मंत्री ने दो करोड़ सत्तानवें लाख द्रव्य खर्च किया, तीन साल में कार्य पूर्ण हुआ। श्री हेमचंद्राचार्य को बुलाकर धामधूम से उत्सव पूर्वक वि.सं.2113 में प्रतिष्ठा करायी।

वर्ग पहेली क्रमांक-302

✻ प्रस्तुति :- जयंतीलाल जैन, रतलाम (म.प्र.)

1		2	3	■	4		5	
	■	6				■		■
7	8	■		■	9	10		11
■	12	13		14	■		■	
15	■		■		■		■	
	■		■	16	17		18	■
19	20		21	■		■	22	23
■		■	24			25	■	
26				■	■	27		

बाएं से दाएं:-

1- भावी चौवीसी के प्रथम तीर्थकर श्री --- स्वामी (4)

4- वीर प्रभु का नाम (4)

6- ----- नव लय, ताल छंद नव, नवल कंठ नव, जलद संद रव नव नभ के नव विहग वृंद को, नव पर नव स्वर दे----- (2,2) ''निराला''

7- मध्यप्रदेश का संक्षिप्त नाम ---- (1,1)

9- 19 वें तीर्थकर के पिता राजा कुंभ मि---- री के राजा थे (2,2)

12-आ.नवरत्नसागरजी म.सा.द्वारा प्रस्थापित भ. शांतिनाथ की 87000 वर्ष प्राचीन प्रतिमावाला तीर्थ---(4)

16-अंग पूजा करते समय भगवान के मस्तक पर लगाते है, चन्द---- (11,2)

19-मेघरथ के रुप में भ.शांतिनाथ के दसवें भव में पिता -----(4)

22-नशा, अहंकार का पर्याय (2)

24-कर्नाटक में भगवान नेमिनाथ का एक तीर्थ, यहां मान स्तम्भ भी है---- (4)

26-कुल वंश का पर्याय (4)

27-कल्पतीत देवों के 2 भेद में से एकः न-------- यक (1,2)

ऊपर से नीचे:-

1- भारत का सर्वोच्च सैन्य अलंकरण------वीर चक्र (3)

2- सिक्ख धर्मगुरु जिनका जन्मदिन कार्तिक पूर्णिमा को आता हैः----- क देव (2)

3- ------- तुम चरणों नी सेवा, हुं तो मांगु छु देवाधिदेवा, सामे जुओ मे सेवक जाणी, एवी उदय रतन नी वाणी (2,2)

4- बिन बुलाया मेहमान (3)

5- सुनवान अथवा निर्जन क्षेत्र का पर्याय (3)

8- हे---- आनंद दाता ज्ञान हमको दीजिए शीघ्र सारे दुर्गुणों को दूर हमसे कीजिए (2)

10-भोपाल का नया मंदिर मनुआभाट की टेकरी पर यहां है----- (4)

11-वरघोड़े में रथ में विराजित भगवान को वंदन करते समय करते है----(3)

13-शेरिसा तीर्थ के निकट भ.महावीर का तीर्थ (4)

14-गोधन, गजधन, बाजिधन और---- धन खान, जब आवे संतोष धन, सब धन धूरि समान (3)-कबीर

15-प्राचीन समय में इस देश की राजधानी पाटलिपुत्र से पहले राजगृही थी (3)

17-भ.महावीर का निर्वाण कल्याणक इस माह में आता है (3)

18-----क्रोध मद लोभ की जब लग घट में खान, कबीर मूरख पंडित, दोनों एक समान (2) -कबीर

20-भ.महावीर का 25 वां भव----मुनि का था (3)

21-कड़ी मेहनत के बाद आ ही जाती है (3)

23----- तीर्थकर भगवान का लांछन है, श्रीवत्स (3)

25-जैन शास्त्रानुसार काल गणना में सात स्तोक बराबर है एक--- (2)

वर्ग पहेली क्रमांक-301 का परिणाम

✻ प्रस्तुति :- जयंतीलाल जैन, रतलाम (म.प्र.)

ते	जो	ले	श्या	■	अ	श्व	से	न
रा	■	सु	द	र्श	न	■	ना	■
■	नं	■	वा	■	न्त	■	दे	श
चं	द	न	■	क	■	क	वी	ता
द्रा	■	पु	रि	म	ता	ल	■	नि
न	व	र	■	ठ	■	श	त	क
न	र	■	आ	■	सु	■	प	■
■	मा	■	का	मा	य	नी	■	चं
फ	ला	दे	श	■	शा	ली	भ	द्र

ज्ञानगंगोत्री क्रमांक-302

✻ आचार्य प्रवर श्री मृदुरत्नसागरजी म.सा.

1-5 दर्शन, ज्ञान एवं चारित्र के उपकरणों को अलग-अलग कीजिये। (विभाजित)

1-कैसर 2- ठहवणी 3- झोली 4- तरपणी 5- दस्तरी 6- भंडार 7-दीपक 8- घड़ा 9- डापरी 10- घंट 11-दर्पण 12-संथारा 13- पायकेसरि 14-कलश 15-छत्र 16-सुपड़ी।

ज्ञानगंगोत्री क्रमांक–301 के परिणाम

सही उत्तर-

1- कनक रथ, 2- कल्पक, 3- कनक, 4- कनकखल, 5- कर्णिका, 6- कुलिका, 7- कुत्रिकापण, 8- कालशौरीक, 9- कालिक, 10- कोणिक, 11-कोशाश्राविका।

मई 2020 की आगमोद्धारक पत्रिका पाठकों को उपलब्ध वाट्सअप नंबर पर भेजी गई थी इसलिये वर्गपहेली और ज्ञानगंगोत्री के उत्तर हमें प्राप्त नहीं होने से किसी को भी पुरस्कार नहीं दिया गया है। जून माह की आगमोद्धारक भी वाट्सअप पर ही भेजी जावेगी। क्योंकि इन्दौर+उज्जैन दोनों स्थान रेडझोन में होने से प्रिंटिंग प्रेस और कागज की दुकानें बंद है। सहयोग करें।

आगमोद्धारक सदस्यता शुल्क ऑन लाईन भेजिये....

आगमोद्धारक का सदस्यता शुल्क आप ऑन लाईन बैंक में जमा कर सकते है। शुल्क भेजने के लिये बैंक- आय.सी.आय.सी.आय. बैंक, शाखा तीन बत्ती चौराहा, उज्जैन (म.प्र.)

खाता:-श्री सिद्धसेन दिवाकर चेरिटेबल ट्रस्ट, 46, सखीपुरा, उज्जैन (म.प्र.)

खाता क्रं. 030001000331

IFSC Code ICICI0000300

✻ कांची नरेश और भगवान के दरिद्र भक्त विष्णुदास ने एक बार अनंतशयनम् तीर्थ के विष्णु विग्रह पर एक साथ श्रद्धासुमन चढ़ाए तो विष्णु पूजा का सच्चा अधिकारी कौन है, इस पर एक स्पर्द्धा चल पड़ी। राजा या रंक, यह विवाद चलने लगा। राजा ने एक विराट विष्णु महायज्ञ का आयोजन किया। इधर विष्णुदास भी अपने आराध्य की भक्ति में लीन हो गये। राजा का वैभव पूर्ण प्रदर्शन से भरा महायज्ञ और रंक की भक्ति अनवरत चलती रही। इधर विष्णुदास ने देखा कि वे भोजन बनाते हैं और उनके भोग लगाने से पूर्व ही कोई चोर चुराकर ले जाता है। आठवें दिन चोर पकड़ में आया। एक दीन-हीन अस्थिपंजर का बना कंकाल। विष्णुदास द्रवित हो उठे। वे उसकी ओर बढ़े। भयभीत हो वह भागा। रूखी रोटी उसके हाथ में थी। इधर विष्णुदास चिल्लाते जा रहे थे-रूको अतिथि! यह घृत भी ले जाओ। भयभीत न होओ। मैं तुम्हारा सेवक हूं। रूखी रोटी मत खाना। तभी उस दीन-हीन में से भगवान प्रकट हो गये और संदेह अपने साथ अपने भक्त विष्णुदास को वैकुंठ ले गये। सच्ची भक्ति में बड़ा बल होता है।

सूचना- अब पहेली के लिये ड्रा द्वारा प्रोत्साहन राशि पुरस्कार में दी जायेगी। इसके लिये ड्रा निकालकर क्रमशः तीन पुरस्कार तीन विजेताओं को रुपये 31/-, 21/-, 11/- एम.ओ.भेजे जावेंगे। सही उत्तरवाले नाम हम छापेंगे ही। आप सहयोग बनाये रखिये। धन्यवाद।

नोट- पोस्टकार्ड पर अपने पते के साथ शहर के पिनकोड नंबर अवश्य डालें।

प्रिय पाठकों! उपर्युक्त प्रश्नों के उत्तर हमें पोस्टकार्ड पर लिखकर हमें दिनांक 25-6-2020 तक भेज दीजिये। सही उत्तरों में से लक्की ड्रा निकालकर प्रथम तीन को क्रमश:51/-, 31/-, 21/- रूपये की राशि से सम्मानित किया जायेगा साथ ही उत्तीर्ण होने वालों के नाम ''आगमोद्धारक'' मासिक में प्रकाशित किये जायेंगे। भेंट राशि एम.ओ. द्वारा भेजी जायेगी। - सम्पादक

✻ अनु दीपक जैन, जयपुर, मो.नं. 9782499999

आगमोद्धारक भविष्य फल जून-2020

मेष– ये माह आपके व्यापार हेतु बेहतर फलदायक रहेगा। आर्थिक प्रगति हेतु योजनाएं क्रियान्वित करने के अवसर प्राप्त होंगे। मित्रों का सहयोग मनोबल में वृद्धि देगा परन्तु पारिवारिक वातावरण कुछ अशांति दे सकता है। महत्वपूर्ण तिथि-4,5,6,14,15,23,24

वृषभ– ये माह आपके लिये कुछ तनावयुक्त रह सकता है। व्यापार हेतु ऋण लेने की संभावनाएं बढ़ेगी। विरोधी पक्ष चाहते हुए हानि नहीं पहुंचा पाएंगे। मित्रों अथवा भाईयों से मन मुटाव संभावित है।

महत्वपूर्ण तिथि- 7,8,16,25,26

मिथुन– ये माह आपके लिये परिश्रम का रहेगा। उच्चाधिकारियों का बेहतर सहयोग मिलेगा परन्तु क्रोध की अधिकता बनते हुए कार्य बिगाड़ सकती है। विवेक पूर्वक निर्णय करें।

महत्वपूर्ण तिथि-1,9,10,19,20,28

कर्क– ये माह आपके लिये कुछ नई जिम्मेदारी लेकर आएगा। व्यापारिक लाभ में आशानुसार वृद्धि होगी परन्तु व्यय की अधिकता भी रहेगी। स्वास्थ्य संबंधी समस्या उभर सकती है। क्रोध पर नियंत्रण रखना हितकर रहेगा। महत्वपूर्ण तिथि- 2,3,4,11,12,13,21,22

सिंह- आपके लिये ये माह शुभ समाचार लेकर आएगा। व्यापारिक स्थिति में स्थिरता आएगी। धार्मिक एवं सामाजिक कार्यो में रुचि अभिवृद्धि होगी। बेहतर धन लाभ की संभावना रहेगी। पारिवारिक वातावरण बेहतर रहेगा। महत्वपूर्ण तिथि-4,5,6,14,15,23

कन्या– आपके लिये ये माह उत्तम फलदायक रहेगा। मित्रों एवं बंधुओं के सहयोग से कार्य सिद्ध होंगे। विशेष पारावारिक आयोजन संभावित है। इस माह यात्रा टालना हितकर रहेगा।

महत्वपूर्ण तिथि- 7,8,16,17,18,25,26

तुला– ये माह आपके लिये विशेष परिश्रम का रहेगा। बुजुर्गो एवं अधिकारी वर्ग का सहयोग शुभ फलदायक रहेगा। आय वृद्धि की संभावना रहेगी एवं व्यापारिक गतिविधियों में वृद्धि होगी। भाग्य से अधिक कर्म का सहयोग प्राप्त होगा। महत्वपूर्ण तिथि-1,9,10,19,20,28

वृश्चिक– ये माह व्यापारिक कार्यो की गति में कुछ अस्थिरता दे सकता है। आय से अधिक व्यय के कारण मानसिक तनाव एवं अस्थिरता रह सकती है। इस समय किसी भी तरह के विवाद में उलझना अनुकुल नहीं है। महत्वपूर्ण तिथि-2,3,4,11,12,13,21,22

धनु– इस माह कार्य संबंधी तनाव की स्थिति रह सकती है। सही समय पर किया गया उचित निर्णय शुभ सिद्ध होगा। शत्रु पक्ष हावी होने का प्रयास करेंगे। माह का उत्तरार्ध बेहतर फल देनेवाला सिद्ध होगा। महत्वपूर्ण तिथि- 4,5,6,14,15,23,24

मकर– इस माह स्वपरिश्रम एवं बौद्धिक क्षमता से व्यापार में शुभ परिणाम प्राप्त होंगे। सामाजिक मान सम्मान में वृद्धि होगी। परिवार वातावरण उत्साहजनक रहेगा परन्तु कुछ स्वास्थ्य संबंधी समस्या परेशान कर सकती है। महत्वपूर्ण तिथि-7,8,16,17,18,25,26

कुम्भ- ये माह पारिवारिक सुख शांति में वृद्धिकारक रहेगा। व्यापार में भी बेहतर लाभ प्राप्त होंगे। मान सम्मान वृद्धि हेतु बेहतर समय है। क्रोध पर अवश्य नियंत्रण रखे अथवा बनते हुए कार्य बिगड़ सकते है। महत्वपूर्ण तिथि- 1,9,10,19,20,28,29

मीन– ये माह पारिवारिक वातावरण हेतु बेहतर रहेगा। व्यापार में नई योजना बन सकती है। रुका हुआ धन प्राप्त होने की संभावना रहेगी। माह के उत्तरार्द्ध में वाणी एवं क्रोध पर नियंत्रण रखें।

महत्वपूर्ण तिथि- 2,3,4,11,12,13,21,22

कोरोना वायरस की महामारी से धर्माराधना पर भी असर चार्तुमास और आगे के सब धर्म कार्यक्रम का स्वरुप बदला

अनेक गुरु भगवंतों-साधु-साध्वीजी ने कोरोना महामारी से चार्तुमास स्थान परिवर्तन किये

उज्जैन- कोरोना महामारी के देश में फैलने और 22 मार्च को देश के प्रधानमंत्रीजी के द्वारा लॉकडाउन की घोषणा से सभी धर्म-राजनीति, सामाजिक तीज-त्यौहार, आयोजन-महोत्सव पर ब्रेक लग गया है जो इस अंक के प्रकाशन तक जारी है। पिछले तीन अंक का प्रकाशन हार्ट कॉपी के रुप में (अप्रेल-जून) का हम नहीं कर पाये फिर भी वॉट्सअप पर पी.डी.एफ. फाईल्स से पाठकों तक आगमोद्धारक पहुंचाई गई है। हम सतत् इस प्रक्रिया में लगे हुए है। महामारी की भारी विपदा ने चार्तुमास में भी व्यापक परिवर्तन करवा दिये है। लॉकडाउन की घोषणा होने के बाद सभी गुरु भगवंतों साधु-साध्वीजी की विहार यात्रा स्थगित हो गई, सभी प्रोग्राम कैंसल करना पड़े अब इसके पूर्व के कारण चार्तुमास करने के लिये जो पूर्व निर्धारित स्थान संघ तैय हुए थे वह भी सब परिवर्तन करना पड़ रहे है। सागर संघ गच्छाधिपति, पूज्यपाद आचार्य देवेश जिनागमसेवी श्री दौलतसागरसूरीश्वरजी महाराजा, आचार्य श्री नंदीवर्धनसागरसूरीजी, आचार्यश्री हर्षसागरसूरीजी म.सा.आदि ठाणा का चार्तुमास अब पूना नहीं होते हुए सूरत में होगा। सूरत में ही पूज्य गच्छाधिपतिश्रीजी की 100 वीं वर्षगांठ भी मनाई जावेगी। इसी प्रकार आचार्य श्री जिन-जित चन्द्रसागर सूरीजी का चार्तुमास नागपुर के स्थान पर अन्यत्र होगा, युवाजैनाचार्य श्री विश्वरत्नसागर सूरीजी का चार्तुमास अब श्री नाकोड़ा तीर्थ के स्थान पर श्री सिद्धाचल महातीर्थ पालीताना होगा। आचार्यश्री मृदुरत्नसागरसूरीजी म.सा.का चार्तुमास भी अब अहमदाबाद न होकर बदनावर होगा, इसी प्रकार अनेक साधु-साध्वीजी के चार्तुमास स्थान में भी परिवर्तन हुआ है। आचार्यदेवश्री नरदेव सागरसूरीश्वरजी म.सा. जो वर्तमान में देपालपुर में विराजित है, आपका चार्तुमास उज्जैन में ही होगा, ऐसी पूर्ण संभावना है। इसी प्रकार आचार्यश्री मुक्तिरत्नसागरसूरीजी म.सा. जो उज्जैन ही विराजित है, आपका चार्तुमास भी उज्जैन ही होगा। गणि आदर्शरत्न सागर जी म.सा. का चार्तुमास भोपाल में होगा। श्री आदिनाथ जैन श्री संघ तुलसीनगर में होगा। अनुयोगाचार्य श्री वीररत्नविजयजी का चार्तुमास उज्जैन के स्थान पर मातमोर में होगा।

आचार्य मृदुरत्नसागर सूरीजी म.सा. का चार्तुमास बदनावर में होगा

बदनावर- आचार्य देवेश मालव भूषण पूज्यपाद गुरुदेव श्री नवरत्नसागरसूरी महाराजा के तृतीय सुशिष्य आचार्य देवेश श्री मृदुरत्नसागर सूरीजी का चार्तुमास बदनावर जिला धार(म.प्र.) में होगा। प्रवेश 28 जून का है।

देवलोकगमन

आगमोद्धारक समुदायक तीर्थ साध्वी श्री रत्नत्रयाश्रीजी म.सा.की सुशिष्या साध्वीश्री अमितज्ञाश्रीजी का 3 मई को पालीताना में देवलोकगमन हो गया है। दीक्षा प्रयार्य 51 वर्ष तथ वय 76 वर्ष थी, 3 मई को ही आपका अंतिम संस्कार हुआ।

परमात्मा की भक्ति ही जिसे प्रिय है ऐसे पुरुष को यदि ऐसी (व्यवहारिक) कठिनाई न हो तो फिर उसे सच्चे परमात्मा की भक्ति ही नहीं है, ऐसा समझना चाहिये। कठिनता और सरलता, साता और असाता, ये भगवद् भक्त को समान ही है, और कठिनता और असाता दो विशेष अनुकूल है, क्योंकि वहां मायाका प्रतिबंध दृष्टिगत नहीं होता।

हमारे तीज-त्यौहार

1- ज्येष्ठ सुदी-15	5/6/2020	शुक्रवार	चन्द्रग्रहण
2- ज्येष्ठ वदी-2	7/6/2020	रविवार	शुक्रादेव-पूर्व में
3- ज्येष्ठ वदी-14	20/6/2020	शनिवार	रोहिणी तपाराधना
4- ज्येष्ठ वदी-30	21/6/2020	रविवार	सूर्यग्रहण-आद्रा नक्षत्र (केरी का त्याग)
5- आषाढ़ सुदी-5	25/6/2020	गुरुवार	श्री महावीरस्वामीजी च्यवन कल्याणक
6- आषाढ़ सुदी-7	27/6/2020	शनिवार	चौमासी अट्ठाई आरंभ
7- आषाढ़ सुदी-9	29/6/2020	सोमवार	गुरु धनु में

पंचक :–

आरम्भः- ज्येष्ठ वदी-5, बुधवार, दिनांक 10/6/2020, समय-सुबह 27.43 बजे

समाप्तः- ज्येष्ठ वदी-10, सोमवार, दिनांक 15/6/2020, समय-रात्री 27.18 बजे

पुष्प नक्षत्र :–

आरम्भः- आषाढ़ सुदी-2, मंगलवार, दिनांक 23/6/2020, समय-दोपहर 13.33 बजे

समाप्तः- आषाढ़ सुदी-3, बुधवार, दिनांक 24/6/2020, समय-दोपहर 13.10 बजे

तुम बदलो न बदलो, नजारे बदल जायेंगे
यदि आ गये इनके पास तो
जिन्दगी जीने के अन्दाज बदल जायेंगे....

आगमोद्धारक का आगामी अंक "चातुर्मास विशेषांक" होगा। आपकी रचनाएं भेजिए।

सारे देश में आगमोद्धारक प्रतिनिधि नियुक्त करना है

जैन जगत की प्रतिष्ठित, प्रसिद्ध मासिक पत्रिका आगमोद्धारक के सदस्यता अभियान के लिये सारे देश में प्रतिनिधियों की नियुक्ति की जा रही है। सक्रिय युवा भाई-बहन जो जिनशासन के प्रचार-प्रसार हेतु अपनी सेवा देना चाहते है वे तुरन्त निम्न पते पर संपर्क करें।

प्रतिनिधि को कम से कम 25 सदस्य बनाना आवश्यक है। आपकी सहमति प्राप्त होने पर रसीद कट्टे एवं प्रचार-प्रसार सामग्री आपको भेजी जायेगी। सम्पादक से सम्पर्क करें।

✲ साधु धर्म के आचरण की सामान्य लोगों पर बहुत प्रभावी छवि पड़ती है।

सादर आमंत्रण

✲ पूज्य साधु-साध्वीजी से विनंती है कि आपके चार्तुमास एवं सभी धार्मिक कार्यक्रमों की जानकारी एवं धार्मिक महोत्सव की सूचना आगमोद्धारक तक पहुंचाने का कष्ट करें, ताकि अंक आपको लगातार भेजा जा सके तथा समाचार प्रकाशित किया जा सकें।

✲ आगमोद्धारक के लिये आपकी रचनाएं भी प्रकाशन के लिये निरंतर भेजते रहे। आपकी रचना से हम प्रोत्साहित होंगे।

✲ पत्रिका को और अच्छा बनाने के लिये आपके सुझाव, मार्गदर्शन भी भेजते रहे ताकि आगमोद्धारक की गुणवत्ता बढ़ाई जा सके।

✲ अंक आपके तक नियमित रुप से नवीन स्वरुप के साथ 10 तारीख तक पहुंचे ऐसा हमारा प्रयास रहता है, अंक अप्राप्ति पर शीघ्र सूचित करें।

- सम्पादक

वर्ष-25 ज्येष्ठ-आषाढ जून 2020 अंक-6

आर.एन.आई. नं. 0048570/29/30/982
पोस्टल मालवा डिवीजन पी.आर.एन. नं. एन.जी. 06/2018-2020

प्रति,
डॉ. सुभाष जैन (सम्पादक)
आगमोद्धारक
46, सखीपुरा, उज्जैन – 456 001 (म.प्र.)
फोन : 0734 – 2558353, मोबा. 09425

1-E-mail-Subash_3333@yahoo.co.in
2-E-mail-i.am.Subhashjain@gmail.com

प्रति,
श्रीमान

श्री अभ्युदय फाउण्डेशन उज्जैन के लिये डॉ. सुभाष जैन – संपादक द्वारा प्रकाशित एवं एम.बी. ऑफसेट प्रिंटर्स
285, एम.जी. रोड, इंदौर से मुद्रित। फोन : 0734 – 2412232, संपादक मोबा. नं. 94250-91012, 8770884897